1. 18वीं सदी का भारत

अध्ययन की सुविधा के लिए हम इतिहास को विभिन्न कालखण्डों में विभाजित कर देखते हैं- जैसे प्राचीन काल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल। कुछ निश्चित विशेषताओं के आधार पर इन कालखण्डों का विभाजन किया जाता है जिसके अंतर्गत राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विशेषताएं सम्मिलित होती हैं। आधुनिक भारत के इतिहास के अंतर्गत मूलतः हम दो बातों का अध्ययन करते हैं। पहला, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना एवं इस साम्राज्य को बनाए रखने के लिए अंग्रेजों द्वारा अपनाई गयी नीतियाँ तथा दूसरा, भारतीयों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध की गयी प्रतिक्रिया। इन दोनों बातों को हम भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद एवं भारतीय राष्ट्रवाद के रूप में देखते व समझते हैं। ये दोनों प्रक्रियाएं अलग – अलग नहीं बल्कि थोड़े अंतरालों के साथ लगभग साथ – साथ चलने वाली प्रक्रिया थी।

आगे हम विस्तार से उपनिवेशवाद व राष्ट्रवाद की संकल्पना को उदाहरणों सहित समझने का प्रयास करेंगे लेकिन उससे पहले हम भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करेंगे। इसके अंतर्गत हम 18 वीं सदी के भारत की स्थिति के सन्दर्भ में समझ विकसित करने का प्रयास करेंगे। यहाँ हम सबसे पहले यह समझने का प्रयास करेंगे कि 18 वीं सदी की वे कौन सी परिस्थितियाँ थी जिसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को पल्लवित - पुष्पित होने का अवसर प्रदान किया।

इसके तहत हम 18 वीं सदी के भारत की राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में एक सामान्य समझ बनाएंगे।

राजनीतिक व्यवस्था

- 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के समय भारतीय उपमहाद्वीप के एक बड़े भूभाग पर मुग़ल साम्राज्य का अस्तित्व था किन्तु कई कारणों से मुग़ल साम्राज्य अपने पतन की ओर अग्रसर हो चुका था और औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य निरंतर कमजोर होता गया और इसके क्षेत्रीय प्रसार भी निरंतर संकुचित होता चला गया और मुग़ल साम्राज्य के भाग्नाशेषों पर कई क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ।
- इस प्रकार मुग़ल साम्राज्य के पतन से एक मजबूत केंद्रीय सत्ता का अभाव एवं छोटे – छोटे क्षेत्रीय राज्यों की उपस्थिति 18 वीं सदी के भारत की प्रमुख राजनीतिक विशेषता थी। ये छोटे – छोटे क्षेत्रीय राज्य आपस में संघर्षरत थे एवं दूसरे की कीमत पर अपना राजनीतिक विस्तार करना चाहते थे।
- यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि 18 वीं सदी के मध्य तक आते – आते मुग़ल सत्ता केवल नाममात्र की ही रह गयी थी लेकिन फिर भी पुरे भारतीय उपमहाद्वीप में राजनीतिक वैधता प्रदान करने के लिए मुग़ल सत्ता का अपना प्रतीकात्मक महत्व था और इसे हम न केवल देशी राज्यों के सन्दर्भ में देख सकते हैं बल्कि ब्रिटिश व्यापारिक कंपनियों के सन्दर्भ में भी देख सकते हैं।
- 18वीं सदी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों की गतिविधियाँ थी। यद्यपि, ये कंपनियां 17वीं सदी से ही भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय थी तथापि 18 वीं सदी में न केवल इनकी आर्थिक सक्रियता में वृद्धि हुई बल्कि भारतीय परिस्थितियों के कारण इनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा भी जगी और 18 वीं सदी में यूरोपीय कंपनियों का आपसी संघर्ष भारत की राजनीतिक व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता रही थी।

18वीं सदी के प्रमुख क्षेत्रीय राज्यों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर लेते हैं

18 वीं सदी के प्रमुख क्षेत्रीय राज्य

- 18 वीं सदी के क्षेत्रीय राज्यों को हम मूलतः तीन वर्गों में बांटकर देख सकते हैं। पहले, वे राज्य जो मुग़ल सत्ता के कमजोर होने के कारण मुग़ल प्रशासकों / सूबेदारों / नबावों की महत्वाकांक्षा के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आए थे। वस्तुतः केंद्रीय सत्ता के कमजोर होते ही क्षेत्रीय प्रशासकों द्वारा अपनी स्वायत्तता के लिए प्रयास किए जाने से ऐसे राज्य अस्तित्व में आए और ऐसे राज्यों को **उत्तराधिकारी राज्य** कहा जाता है। बंगाल, अवध और हैदराबाद जैसे राज्यों को उत्तराधिकारी राज्य के रूप में जाना जाता है।
- राज्यों का एक दूसरा वर्ग था जिन्हें **विद्रोही राज्य** के रूप में जाना जाता है। ये केंद्रीय मुग़ल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आए। इन विद्रोही राज्यों में हम मराठा, जाट, अफ़गान एवं पंजाब के क्षेत्रीय राज्यों को देख सकते हैं। यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि ये राज्य

अपनी राजनीतिक व्यवस्था एवं स्थानीय परिस्थितियों में एक दूसरे से प्रर्याप्त भिन्नता रखते थे। साथ ही मुग़ल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह में न केवल स्थानीय सरदार शामिल थे बल्कि छोटे–बड़े जमींदारों व किसानों की भी संलिप्तता रहती थी।

- इन दोनों के अतिरिक्त क्षेत्रीय राज्यों का एक तीसरा वर्ग भी था जो पहले से ही बहुत अधिक स्वायत्त थी तथा 18 वीं सदी की परिस्थितियों में इन्होनें अपनी पूर्ण स्वतंत्रता की एक प्रकार से घोषणा कर दी। इन राज्यों में हम राजपुताना के राज्यों, मैसूर, त्रावणकोर आदि को देख सकते हैं।

बॉक्स में क्षेत्रीय राज्यों के संबंध में कुछ अतिमहत्वपूर्ण तथ्यात्मक जानकारी

1. **हैदराबाद :**
   - वर्ष 1724 में चिनकिलिज खां / निजामुलमुल्क के द्वारा हैदराबाद राज्य की स्थापना।
   - निजामुलमुल्क तुरानी गुट से संबंधित था।
   - निजामुलमुल्क ने सैय्यद बंधुओं के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा यह 1722 में इसे वजीर का पद प्रदान किया गया।
   - दिल्ली दरबार के षडयंत्रकारी दूषित माहौल से तंग आकर चिनकिलिज खां ने दक्कन की ओर प्रवास किया और वहीं स्वतंत्र राज्य की स्थापना के लिए प्रयास किया।
   - मुग़ल सम्राट मुहम्मदशाह ने चिनकिलिज खां के दक्कन में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के प्रयासों को देखते हुए मुबारिज खां को दक्कन का वायसराय बना दिया परंतु अक्टूबर 1724 में ' शूकर खेड़ा के युद्ध 'में चिनकिलिज खां ने मुबारिज खां को पराजित कर मार डाला।
   - इसके बाद सम्राट मुहम्मदशाह ने चिनकिलिज खां को दक्कन का वायसराय स्वीकार करते हुए 'आसफजाह' की उपाधि प्रदान की।
   - चिनकिलिज खां ने हैदराबाद में निजामशाही को स्थापित किया, हालांकि मराठों के कारण उसे कुछ कठिनाइयां हुई और बाजीराव द्वारा युद्ध में भी पराजित हुआ।
   - 1739 में नादिरशाह के विरुद्ध युद्ध (करनाल के युद्ध) में चिनकिलिज खां ने मुग़ल सम्राट का साथ दिया था।
   - 1748 में चिनकिलिज खां / निजामुलमुल्क की मृत्यु हुई।
   - हैदराबाद का राज्य भारत की आज़ादी के बाद तक अस्तित्व में रहा और अंततः ऑपरेशन पोलो के माध्यम से सितंबर 1948 में इसका भारतीय गणराज्य में विलय कराया गया।
2. **अवध**
   - सआदत खां बुरहानुलमुल्क द्वारा मुग़ल साम्राज्य से अलग स्वतंत्र अवध के राज्य की स्थापना की गयी।
   - सआदत खां 1720 – 22 तक आगरा का गवर्नर रहा था, 1722 में मुग़ल सम्राट मुहम्मदशाह द्वारा इसे अवध का सूबेदार नियुक्त किया गया।
   - आगे इसने स्वतंत्र अवध राज्य की स्थापना की।
   - 1739 में नादिरशाह के विरुद्ध युद्ध में सहयोग के लिए मुग़ल सम्राट द्वारा सआदत खां को बुलाया गया किन्तु उससे पहले ही उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली।
   - यहाँ ध्यान रखने वाली बात है कि सआदत खां ने ही नादिरशाह को दिल्ली पर हमले के लिए प्रेरित किया और उसे भरोसा दिलाया कि इस आक्रमण से उसे लगभग 20 करोड़ की धन – संपत्ति प्राप्त होगी लेकिन ऐसा नहीं होने के कारण सआदत खां ने नादिरशाह के भय से आत्महत्या कर ली।
   - सआदत खां की मृत्यु के बाद उसका दामाद व भतीजा सफ़दरजंग को मुग़ल सम्राट द्वारा अवध की नवाबी प्रदान की गयी।
   - 1748 में सफदरजंग मुग़ल सम्राट का वजीर बना तथा इलाहाबाद का प्रांत भी इसे प्रदान किया गया।
   - इसने मराठों के विरुद्ध भी संघर्ष किया। सफदरजंग को अपने कुशल प्रशासन के लिए जाना जाता है। इसने प्रशासनिक नियुक्तियों में धार्मिक भेदभाव नहीं किया।
   - वर्ष 1754 में सफदरजंग की मृत्यु के बाद शुजाउदौला अवध का नवाब तथा मुग़ल सम्राट का वजीर बना।
   - शुजाउदौला के काल में बक्सर का युद्ध (1764) हुआ तथा इसने रूहेलखंड पर भी अधिकार कर लिया। 1775 में शुजाउदौला की मृत्यु हो गयी।
   - शुजाउदौला के बाद आसफुद्दौला अवध का नवाब बना जिसने फैज़ाबाद से लखनऊ राजधानी स्थानांतरित की।

- वर्ष 1856 में डलहौजी ने कुशासन के आधार अवध का विलय ब्रिटिश साम्राज्य में किया; इस समय अवध का नवाब वाजिद अलीशाह था।

3. **बंगाल**
   - बंगाल के स्वतंत्र राज्य की स्थापना का श्रेय मुर्शीद कुली खां को जाता है। यहाँ ध्यान रखने वाली बात है कि बंगाल प्रथम मुग़ल प्रांत था जो मुग़ल सत्ता से स्वतंत्र हुआ और प्रथम भारतीय प्रांत था जिस पर अंग्रेजो द्वारा आधिपत्य स्थापित किया गया।
   - मुग़ल सम्राट फर्रुखसियर द्वारा 1719 में मुर्शीद कुली खां को उड़ीसा की सुबेदारी भी प्रदान की गयी।
   - मुर्शीद कुली खां द्वारा राजधानी ढ़ाका से मुर्शिदाबाद लाया गया।
   - वर्ष 1727 में मुर्शीद कुली खां की मृत्यु हो गयी और उसका दामाद शुजाउद्दीन बंगाल का नवाब बना।
   - वर्ष 1733 में मुग़ल सम्राट मुहम्मदशाह द्वारा शुजाउद्दीन को बिहार की सूबेदारी भी प्रदान की गयी। इस प्रकार बंगाल राज्य में वर्तमान बांग्लादेश, पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड व उड़ीसा के क्षेत्र शामिल थे।
   - वर्ष 1739 में शुजाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सरफ़राज खां शासक बना लेकिन 1740 में बिहार का नायब सूबेदार अलीवर्दी खां ने विद्रोह कर दिया और गिरिया / घिरिया के युद्ध में सरफ़राज खां को पराजित कर सत्ता पर अपना अधिकार जमाया।
   - अलीवर्दी खां की मृत्यु 1756 में हुई और उसके बाद सिराजुदौला गद्दी पर बैठा किन्तु सत्ता के अन्य दावेदारों यथा– घसीटी बेगम, शौकतजंग आदि ने इसका विरोध किया और षड्यंत्रों को बढ़ावा दिया।
   - आगे 1757 में प्लासी के युद्ध के बाद सिराजुदौला की हत्या हुई और बंगाल में अंग्रेजों के समर्थन से मीर जाफर एक रबर स्टांप नवाब के रूप गद्दी पर बैठा।
   - अंततः 1772 में अंग्रेजों ने बंगाल पर प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित कर लिया।

4. **कर्नाटक**
   - कर्नाटक मुगलों के दक्कनी सूबे में से एक था और यह हैदराबाद के अंतर्गत ही आता था किन्तु सआदतुल्ला खां ने स्वतंत्र कर्नाटक राज्य की स्थापना की थी।
   - सआदतुल्ला खां ने कर्नाटक की राजधानी अर्काट को बनया।
   - सआदतुल्ला खां का उत्तराधिकारी दोस्तअली हुआ किन्तु 1740 में मराठों द्वारा इसकी हत्या कर दी गयी।
   - 1740 के बाद उत्तराधिकार संकट के कारण यूरोपीय कंपनियों का हस्तक्षेप कर्नाटक राज्य में बढ़ा और इसका स्वतंत्र अस्तित्व धीरे – धीरे समाप्त हो गया।

5. **सिक्ख राज्य**
   - सिख पंथ की स्थापना गुरु नानक देव द्वारा 15 वीं शताब्दी में की गयी।
   - गुरु हर गोविन्द द्वारा सिखों को एक लड़ाकू दल में परिवर्तित किया गया जबकि दसवें व अंतिम गुरु गोविंद सिंह के प्रयासों से सिख एक राजनीतिक व सैनिक शक्ति बने।
   - 1760 तक सिखों का सम्पूर्ण पंजाब पर अधिकार हो गया। सिखों का विभाजन 12 मिसलों में, इन्हीं में से एक मिसल, सुकर चकिया से रणजीत सिंह संबंधित थे।
   - 1797 में पंजाब के एक क्षेत्र के शासक बने और 1805 तक अमृतसर तथा लाहौर सहित पंजाब के अधिकांश क्षेत्रों पर रणजीत सिंह का आधिपत्य हो गया।
   - 1809 में अंग्रेजों व रणजीत सिंह के बीच अमृतसर की संधि हुई।
   - 1839 में रणजीत सिंह की मृत्यु तक पंजाब एक स्वतंत्र राज्य का अस्तित्व बनाए रखने में सफल रहा, किन्तु रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पंजाब में अव्यवस्था व अराजकता का दौर रहा और अंततः डलहौजी द्वारा 1849 में पंजाब का ब्रिटिश राज्य में विलय कर लिया गया।
   - एक फ्रांसीसी पर्यटक विक्टर जैकोमोंट ने रणजीत सिंह की तुलना नेपोलियन से की।

6. **राजपुत राज्य**
   - 18 वीं सदी में मुग़ल सत्ता के कमजोर होने से राजपुत राज्यों की स्वतंत्रता बढ़ी और इन्होनें मुग़ल शासकों को नजराना देना भी बंद कर दिया।
   - अंग्रेजों के साथ विभिन्न राजपुत राज्यों ने अधीनस्थ राज्य के रूप में अपनी अधीनता स्वीकार की और आजादी के पूर्व तक राजपुताना के बड़े क्षेत्र में इनकी यही स्थिति बनी रही।

7. **जाट राज्य**
   - 18 वीं सदी में मौजूद अव्यवस्था का लाभ उठाकर दिल्ली, मथुरा तथा आगरा एवं आसपास के क्षेत्रों में स्वतंत्र जाट राज्य की स्थापना हुई।
   - भरतपुर में स्वतंत्र जाट राज्य की स्थापना का श्रेय चूडामन एवं बदन सिंह को जाता है।
   - अहमदशाह अब्दाली ने बदन सिंह को राजा की उपाधि दी।
   - जाट शासक सूरजमल के समय जाट शक्ति अपने चरम पर थी। सूरजमल को जाट जाति का प्लेटो कहा जाता है, 1763 में इसकी मृत्यु के बाद जाट राज्य व शक्ति पतनोन्मुख हो गयी।
8. **रुहेलखंड**
   - रुहेलखंड के स्वतंत्र राज्य की स्थापना का श्रेय वीर दाउद एवं उसके पुत्र अली मुहम्मद को जाता है।
9. **फ़र्रुखाबाद**
   - मुहम्मद खां बंगश ने फ़र्रुखाबाद के क्षेत्र में अपना नियंत्रण स्थापित किया और बंगश राज्य की स्थापना की।
10. **त्रावणकोर**
   - सुदूर दक्षिण में मालाबार तट पर स्थित एक छोटा स्वतंत्र राज्य जो सदैव मुगलों से स्वतंत्र रहा।
   - मार्तण्ड वर्मा को त्रावणकोर के आधुनिकीकरण का श्रेय जाता है।
11. **मैसूर**
   - मृतप्राय विजयनगर साम्राज्य से स्वतंत्र मैसूर राज्य पर वडयार वंश के शासकों ने अपनी सत्ता स्थापित की।
   - 1761 में हैदरअली ने मैसूर पर अपना आधिपत्य जमाकर एक मजबूत राज्य की स्थापना की और मैसूर दक्षिण भारत की एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरा।
   - चतुर्थ आंग्ल – मैसूर युद्ध में टीपू सुलतान की मृत्यु के बाद मैसूर के अधिकांश भाग को अंग्रेजों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया।
12. **मराठा**
   - मुगलों के उत्तराधिकारी राज्यों में मराठा राज्य न केवल सर्वाधिक शक्तिशाली था बल्कि तात्कालीन परिस्थितियों में ऐसा माना जा रहा था कि मराठे ही मुग़ल के विकल्प हो सकते हैं और भारतीय उपमहाद्वीप की सत्ता मराठों के पास ही जायेगी।
   - छत्रपति शिवाजी महाराज के नेतृत्व में स्वराज के विचार ने मराठों को एक क्षेत्रीय शक्ति से अखिल भारतीय शक्ति बनने का आधार निर्मित किया और औरंगज़ेब की नीतियों ने अप्रत्यक्ष रूप से इसे बढाने में सहयोग दिया।
   - प्रारंभ में शिवाजी व उनके उत्तराधिकारियों तथा आगे पेशावों के अधीन, विशेषकर बालाजी विश्वनाथ एवं बाजीराव प्रथम, मराठा शक्ति का निरंतर प्रसार होता रहा और 1740 में बाजीराव प्रथम की मृत्यु के समय तक मराठा शक्ति सबसे मजबूत भारतीय राज्य के रूप में अपना स्थान बनाने में सफल रहा।
   - बाजीराव प्रथम के बाद उनका पुत्र बालाजी बाजीराव (नाना साहब) पेशवा बने और मराठा शक्ति को और आगे बढाने का कार्य किया किन्तु इन्हीं के काल में जनवरी 1761 में पानीपत के तृतीय युद्ध में सदाशिव राव भाऊ के नेतृत्व में मराठों को अहमद शाह अब्दाली से क़रारी शिकस्त झेलनी पड़ी।
   - यह मराठा शक्ति के लिए एक ऐसा आघात सिद्ध हुआ जिससे शायद वो कभी उबर नहीं पाए और मुगलों के विकल्प बनने का उनका स्वप्न अधूरा ही रह गया। इसलिए कुछ इतिहासकार पानीपत के तृतीय युद्ध के संबंध में कहते हैं कि "इस युद्ध ने इस बात का फैसला नहीं किया कि कौन भारत पर शासन करेगा बल्कि इस बात का निर्धारण किया कि कौन भारत पर शासन नहीं करेगा"।
   - पानीपत के तृतीय युद्ध के आघात को पेशवा बालाजी बाजीराव सहन नहीं कर सके और 1761 में ही उनका निधन हो गया। इसके बाद माधव राव प्रथम पेशवा बने और मराठों की खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त स्थापित करने का भरसक प्रयास किया और इसमें उन्हें बड़ी सफलता भी मिली, किन्तु 1772 में पेशवा माधव राव की असामयिक मृत्यु मराठा साम्राज्य के लिए संभवतः पानीपत के तृतीय युद्ध से भी अधिक भयंकर परिणामों वाला रहा।
   - आगे 1775 से 1782 तक टुकड़ों में चला प्रथम आंग्ल – मराठा युद्ध लगभग बराबरी पर समाप्त हुआ किन्तु इसके बाद 1782 में हुई सालबाई की संधि ने युद्ध विराम तो कराया लेकिन इसका लाभ जिस प्रकार अंग्रेजों ने उठाया, मराठे उसमें सफल नहीं हो सके।

- जहां अंग्रेजों ने अपनी शक्ति मजबूत की, वहीं आंतरिक कलह व गुटबंदी के कारण मराठा शक्ति निरंतर कमजोर होता गया और परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने अंततः द्वितीय व तृतीय आंग्ल – मराठा युद्ध में मराठों को पराजित कर इनकी शक्ति का समूल नाश कर दिया।
- 1817-18 में तृतीय आंग्ल – मराठा युद्ध के बाद पेशवाई समाप्त। बाजीराव – द्वितीय को पेंशन पर कानपुर के निकट बिठूर भेज दिया, जहां इसकी मृत्यु 1853 में हुई। 1857 की क्रांति में भाग लेने वाले नाना साहब पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे।

पेशवा और उनका कार्यकाल

पेशवा	कार्यकाल
1. बालाजी विश्वनाथ	1713 – 1720
2. बाजीराव प्रथम	1720 – 1740
3. बालाजी बाजीराव	1740 – 1761
4. माधव राव प्रथम	1761 – 1772
5. नारायण राव	1772 – 1773
6. माधव राव द्वितीय	1773 – 1795
7. बाजीराव द्वितीय	1795 – 1818

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

1.1 उत्तरकालीन मुग़ल बादशाह

- भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल सत्ता की स्थापना 1526 में बाबर द्वारा पानीपत की पहली लड़ाई में जीत के पश्चात हुई। 1526 से 1857 तक हम मुग़ल शासकों को देखते हैं। 1857 की क्रांति के बाद आधिकारिक रूप से अंग्रेजों द्वारा मुग़ल बादशाह की पदवी समाप्त कर दी गयी।
- बाबर से औरंगजेब तक कुल 06 मुग़ल बादशाहों के संबंध में आप मध्यकालीन इतिहास में विस्तार से अध्ययन करेंगे। यहाँ हम केवल उनके शासन अवधि को एक बार दोहरा देते हैं।
  1. बाबर (1526 - 1530)।
  2. हुमायूं (1530 – 1540 एवं 1555 – 1556)।
  3. अकबर (1556 – 1605)।
  4. जहाँगीर (1605 – 1627)।
  5. शाहजहाँ (1628 – 1658)।
  6. औरंगज़ेब (1658 – 1707)।

औरंगजेब की मृत्यु मार्च 1707 में हुई और 1707 से 1857 तक कुल 13 शासक मुग़ल बादशाह के रूप में गद्दी पर बैठे। इन्हीं शासकों को उत्तरकालीन मुग़ल बादशाह के रूप में जाना जाता है।

1. **बहादुरशाह प्रथम (1707 – 1712)**
   - औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके तीन बेटों में सबसे बड़ा मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से बादशाह बना। इसे शाहआलम प्रथम के नाम से भी जाना जाता है।
   - 63 वर्ष की आयु में बादशाह बनने वाला यह सबसे वृद्ध मुग़ल बादशाह था।
   - इसका उत्तराधिकार को लेकर अपने भाइयों मुहम्मद आजम या आजमशाह एवं कामबख्श से संघर्ष हुआ।
   - उत्तराधिकार के युद्ध में इसे राजपुत शासकों तथा सिखों के अंतिम गुरु गोविन्द सिंह का समर्थन प्राप्त हुआ।
   - इसने गुरु गोविन्द सिंह को पांच हजार जात व पांच हजार सवार का मनसब प्रदान किया।
   - सिखों के साथ मेल मिलाप की नीति अपनाई; गुरु गोविन्द सिंह ने बहादुर शाह के साथ दक्कन में युद्ध में भी भाग लिया। लेकिन 1708 में गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के बाद बंदा बहादुर ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह किया।
   - बहादुर शाह ने बुंदेला शासक छत्रसाल तथा जाट सरदार चूडामन के साथ भी मित्रवत संबंध रखा।
   - मराठों के साथ प्रारंभ में इसके मित्रवत संबंध रहे। शाहू को इसने कैद से आजाद किया लेकिन आगे मराठों के साथ अस्थिर नीति के कारण संघर्ष हुआ।
   - इसके शासनकाल में एक ही व्यक्ति को एक से अधिक पद देने की परंपरा प्रारंभ हुई। मीरबख्शी, जुल्फिकार खां को दक्कन के नवाब का पद दिया गया। साथ ही वजीर के पद का महत्व बढ़ा और वजीर के पद के लिए दरबार में गुटबंदी प्रारंभ हुई।
   - इतिहासकार ख़फ़ी खां के अनुसार बहादुरशाह के राजकीय कार्यों में उदासीनता के कारण लोग इसे 'शाहे बेख़बर' कहते थे।
   - इसके शासन काल में दरबार में ईरानी (शिया मत) व तूरानी दल (सुन्नी मत) द्वारा षडयंत्र व गुटबंदी काफी बढ़ी।
   - इसके दरबार में 1711 में एक डच प्रतिनिधि मंडल जेसुआ केटलार के नेतृत्व में आया था।
   - फ़रवरी 1712 में बहादुर शाह प्रथम की मृत्यु हो गयी। इसकी मृत्यु के पश्चात इसके पुत्रों में उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष प्रारंभ हो गया जिस कारण लगभग एक माह तक इसका शव दफ़नाया नहीं गया।
   - प्रसिद्ध इतिहासकार सिडनी ओवन ने कहा है कि बहादुरशाह अंतिम मुग़ल शासक है जिसके संबंध में कुछ अच्छी बातें कही जा सकती हैं।
2. **जहांदार शाह (1712 – 1713)**
   - बहादुरशाह के मरने के बाद जहांदार शाह जुल्फिकार खां के सहयोग से शासक बना।
   - इसे मुगल वंश का सबसे अयोग्य शासक माना जाता है। इसे लम्पट मूर्ख की उपाधि दी गयी।
   - जुल्फिकार खां का प्रभाव शासन पर अत्यधिक रहा।
   - इसके शासन काल में लाल कुंवर नामक वैश्या का भी शासन में काफी हस्तक्षेप था।
   - इजारा व्यवस्था (ठेके पर भूराजस्व वसूल करने का अधिकार) की शुरुआत की गई।
   - राजपुतों, मराठों, जाटों आदि के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध लेकिन

बंदा बहादुर के विरुद्ध सख्त कदम उठाए गए।

- फ़र्रुखसियर ने सैय्यद बंधुओं की मदद से जहांदार शाह को पराजित कर इसकी हत्या करवा दी।
- सैय्यद बंधुओं (हुसैन अली खां एवं अब्दुल्ला खां) को मुगलकालीन इतिहास में शासक निर्माता के रूप में जाना जाता है।

3. **फ़र्रुखसियर (1713 – 1719)**
   - सैय्यद बंधुओं का प्रभाव काफी बढ़ा।
   - दिसंबर 1715 में बंदा सिंह / बंदा बहादुर को बंदी बना लिया गया और इस्लाम स्वीकार नहीं करने पर उसकी हत्या कर दी गयी। इस प्रकार इसके काल में सिख विद्रोह की समाप्ति हुई।
   - 1717 में एक ब्रिटिश दूतमंडल (जॉन सरमन एवं एडवर्ड स्टीफेंस) फ़र्रुखसियर से मिला और 03 हजार रूपये के वार्षिक कर के बदले बंगाल से व्यापार करने का फ़रमान प्राप्त हुआ।
   - इस दूत मंडल में हेमिल्टन नामक एक सर्जन था जिसने फ़र्रुखसियर का ईलाज एक खतरनाक बिमारी से किया।
   - इतिहासकार और्म ने फ़र्रुखसियर के फ़रमान को कंपनी का मैग्नाकार्टा कहा है।
   - सैय्यद बंधुओं फ़र्रुखसियर के विरुद्ध षडयंत्र कर अप्रैल 1719 में इसकी हत्या कर दी। मुग़ल साम्राज्य के इतिहास में किसी अमीर द्वारा बादशाह की हत्या का यह पहला उदाहरण था।
4. **रफ़ी – उद दरजात (28 फ़रवरी से 04 जून 1719)**
   - रफ़ी – उद दरजात को सैय्यद बंधुओं ने फ़र्रुखसियर के बाद गद्दी पर बिठाया। यह सबसे अल्प काल के लिए शासन करने वाला मुग़ल बादशाह था।
   - इसके काल की एक महत्वपूर्ण घटना नेकसियर का विद्रोह था। नेकसियर जो कि अकबर द्वितीय का पुत्र था को विद्रोहियों ने आगरा में सम्राट घोषित कर दिया था।
   - रफ़ी – उद दरजात की मृत्यु क्षय रोग से हुई थी।
5. **रफ़ीउदौला (06 जून 1719 से 18 सितंबर 1719)**
   - सैय्यद बंधुओं ने इसे शासक बनाया।
   - इसने शाहजहाँ सानी / शाहजहाँ द्वितीय की उपाधि धारण की।
   - दूसरा सबसे कम अवधि के लिए मुग़ल बादशाह बना।
   - नेकसियर का विद्रोह समाप्त हुआ।
6. **मुहम्मदशाह रंगीला / रौशन अख्तर (1719 – 1748)**
   - इसके शासन काल में बंगाल (बिहार एवं उड़ीसा सहित) में मुर्शीद कुली खां, अवध में सआदत खां तथा दक्कन / हैदराबाद में निजामुलमुल्क ने अपनी स्वतंत्र सत्ता को स्थापित किया।
   - यह अयोग्य शासक था, अपना अधिकांश समय मनोरंजन (पशुओं की लड़ाई, मदिरा व वैश्याओं के बीच) में बिताता था इसलिए इसे रंगीला बादशाह कहा जाता था।
   - इसके शासनकाल की एक महत्वपूर्ण घटना थी सैय्यद बंधुओं का अंत।
   - इसी के समय में 1739 में फ़ारस / ईरान का शासक नादिरशाह का दिल्ली पर आक्रमण हुआ।
   - इसी के शासन काल में बाजीराव प्रथम ने 1737 में दिल्ली पर एक अभियान किया था जिसका मुहम्मदशाह द्वारा कोई विरोध नहीं किया गया।
7. **अहमदशाह (1748 – 1754)**
   - इसने अवध के नवाब सफदरजंग को अपना वजीर बनाया।
   - इसके शासन काल में हिजड़ों तथा महिलाओं के गुट का शासन पर काफी प्रभाव था; इस गुट का नेतृत्व उधमबाई ने किया। उधमबाई को विला – ए- आलम की उपाधि प्रदान की गयी थी।
   - एक हिजड़ा जावेद खां का शासन में काफी प्रभाव जिसे नवाब बहादुर की उपाधि भी दी गयी थी।
   - मुग़ल अर्थव्यवस्था की हालत काफी खराब।
   - इसी के शासन काल में 1748 में अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ।
   - इसे अंधा कर जेल में डाल दिया गया था।
8. **आलमगीर द्वितीय (1754 – 1759)**
   - इसके वजीर ने ही 1759 में इसकी हत्या कर इसकी लाश को यमुना नदी में फेंक दिया।
   - प्लासी के युद्ध के समय मुग़ल बादशाह।
9. **शाहआलम द्वितीय (1759 – 1806)**
   - आलमगीर द्वितीय का पुत्र।
   - इसका असली नाम अली गौहर था।
   - इसने बिहार (पटना) में 1759 में स्वयं को बादशाह घोषित किया किन्तु दिल्ली के षडयंत्रकारी माहौल के कारण यह 12 वर्षों तक निर्वासित रहा।

- 1761 में पानीपत का तीसरा युद्ध एवं 1764 में बक्सर का युद्ध हुआ।
- बक्सर के युद्ध में यह अंग्रेजों के विरोधी गुट में था, पराजित होने के बाद अंग्रेजों से इलाहाबाद की संधि हुई एवं अंग्रेजों बंगाल, बिहार एवं ओड़िसा की दीवानी प्राप्त हुई।
- 1772 में मराठों की सहायता से दिल्ली पहुंचा।
- कुछ समय बाद इसे अंधा कर दिया गया और यह अंधे शासक के रूप में भी गद्दी पर रहा।
- 1803 में अंग्रेजों ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया और यह मात्र अंग्रेजों का पेंशनभोगी बन कर रह गया। आगे 1806 में इसकी मृत्यु हो गयी।

10. **अकबर द्वितीय (1806 – 1837)**
    - अंग्रेजों के संरक्षण में शासक बनने वाला पहला मुग़ल बादशाह था।
    - अपने पिता शाहआलम द्वितीय की तरह मात्र अंग्रेजों का पेंशनभोगी रहा।
    - इसने राममोहन राय को राजा की उपाधि प्रदान की।
11. **बहादुरशाह द्वितीय (1837 – 1857)**
    - अंग्रेजों द्वारा इसे शाही खिताब रखने की अनुमति।
    - उपनाम जफ़र और यह इतिहास में बहादुरशाह जफ़र के नाम से प्रसिद्ध।
    - शायरी में इसकी रूचि और यह प्रसिद्ध उर्दू शायर मिर्जा ग़ालिब के समकालीन थे।
    - 1857 के विद्रोह में संलग्नता के कारण इसे निर्वासित कर रंगून भेज दिया गया, जहां 1862 में इसकी मृत्यु हो गयी और इसी के साथ मुग़ल वंश का अंत हो गया।

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

1.2 नादिरशाह और अहमद शाह अब्दाली का आक्रमण

- भारत पर उत्तर – पश्चिम से आक्रमण का ख़तरा हमेशा विद्यमान रहा है। जब – जब केन्द्रीय सत्ता कमजोर हुई है इस क्षेत्र से भारत पर आक्रमण हुए हैं। 18 वीं सदी में भी मुग़ल सत्ता के कमजोर होते ही उत्तर – पश्चिम की सुरक्षा व्यवस्था भी कमजोर हुई और इस क्षेत्र दो प्रमुख आक्रमण इस काल में हुए।
- पहले आक्रमण का नेतृत्व नादिरशाह ने किया जबकि दूसरा आक्रमण अहमद शाह अब्दाली के नेतृत्व में हुआ।

नादिरशाह का आक्रमण एवं करनाल का युद्ध (24 फ़रवरी 1739)

- नादिरशाह फारस / ईरान का शासक था। उसे ईरान का नेपोलियन के रूप में भी जाना जाता है।
- फ़रवरी 1739 में नादिरशाह एवं मुग़ल सेना के बीच करनाल में युद्ध हुआ। सम्राट मुहम्मदशाह के साथ निजामुलमुल्क, सआदत खां, कमरुद्दीन, खान – ए- दौरां आदि थे।
- प्रारंभिक युद्ध में नादिरशाह विजयी हुआ और निजामुलमुल्क के प्रयासों से मध्यस्थता व शांति स्थापित हुई। मुग़ल सम्राट ने निजामुलमुल्क को मीर बख्शी का पद प्रदान किया, इससे सआदत खां नाराज हुआ क्योंकि वह स्वयं यह पद चाहता था।
- परिणामस्वरूप सआदत खां ने नादिरशाह को धन का लालच देकर दिल्ली पर आक्रमण को उकसाया। नादिरशाह मार्च 1739 में दिल्ली पहुंचा, जहां 22 मार्च को उसके एक सैनिक की हत्या के अफवाह में उसने दिल्ली में भयंकर कत्लेआम करवाया।
- सआदत खां द्वारा नादिरशाह को 20 करोड़ रूपये की प्राप्ति का लालच दिया गया था किन्तु इन रुपयों की प्राप्ति नहीं होने पर डर से सआदत खां ने आत्महत्या कर ली।
- नादिरशाह लगभग 57 दिनों तक दिल्ली में रहा और लौटते हुए उसने बड़ी मात्रा में धन के साथ – साथ तख्तेताऊस व सुप्रसिद्ध कोहिनूर हीरा भी लूट कर अपने साथ ले गया।

अहमद शाह अब्दाली का आक्रमण

- अहमद शाह अब्दाली नादिरशाह का एक योग्य सेनापति था। उसके विषय नादिरशाह का कहना था कि "योग्यता तथा चरित्र में मैंने ईरान, तुरान तथा हिन्दुस्तान में अहमदशाह के बराबर का कोई आदमी नहीं देखा"।
- नादिरशाह की कृपा से जून 1747 में वह कंधार का स्वतंत्र शासक बना।
- 1748 से 1767 के बीच अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर सात बार आक्रमण किया। इसका सबसे प्रसिद्ध युद्ध जनवरी 1761 में पानीपत का तृतीय युद्ध था जिसमें मराठों को करारी शिकस्त का सामना करना पड़ा।
- 1748 व 1749 में उसने पंजाब क्रमशः पहला व दूसरा आक्रमण किया। जहां पहला हमला असफल रहा, वहीं दूसरे हमले में उसने पंजाब के गवर्नर को पराजित किया।
- 1752 में उसने तीसरा हमला पंजाब पर इसलिए किया क्योंकि उसे नियमित रूप से यहाँ से धन नहीं मिल रहा था।
- नवंबर 1756 में वह हिन्दुस्तान आया तथा जनवरी 1757 में दिल्ली पहुंचकर उस पर कब्जा कर लिया। अपने लगभग एक माह के प्रवास में उसने दिल्ली में नादिरशाह के नरसंहार तथा लूट की घटनाओं को दोहराया।
- दिल्ली से लौटने से पूर्व अब्दाली ने आलमगीर द्वितीय को सम्राट, इमादुलमुल्क को वजीर तथा रूहेला सरदार नजीबुदौला को को मीर बख्शी एवं अपना मुख्य एजेंट के रूप में नियुक्त किया।
- अब्दाली के भारत से जाने के बाद अगले ही वर्ष मराठों द्वारा नजीबुदौला को दिल्ली से भगा दिया गया और पंजाब पर भी अब्दाली के एजेंट को भगा दिया गया; यही अब्दाली और मराठों के बीच युद्ध का मुख्य कारण बना।

पानीपत का तृतीय युद्ध (14 जनवरी 1761)

- मराठों व अब्दाली के बीच हितों का संघर्ष पानीपत के तृतीय युद्ध के मूल में था। अब्दाली भारत विशेषकर दिल्ली व पंजाब पर अपना प्रभाव बनाते हुए यहाँ से निरंतर आर्थिक लाभ चाहता था जबकि मराठे दिल्ली पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे।
- 14 जनवरी 1761 को मराठा सेना व अब्दाली के बीच युद्ध हुआ; मराठा सेना का वास्तविक प्रतिनिधित्व सदाशिव राव भाऊ कर रहे थे जबकि पेशवा का पुत्र विश्वास राव नाममात्र के प्रधान थे। मराठा तोपखाने की कमान इब्राहिम खां गार्दी के पास थी।

- शुरुआती कुछ सफलताओं के अतिरिक्त युद्ध का परिणाम मराठों के लिए किसी भयंकर सपने के समान रहा। सदाशिव राव भाऊ एवं विश्वास राव सहित कई प्रमुख मराठा सरदार सहित बड़ी संख्या में मराठा सैनिक मारे गए।
- युद्ध के परिणाम की भयावहता के संबंध में इतिहासकार जे. एन. सरकार ने लिखा है कि "महाराष्ट्र में शायद ही कोई ऐसा परिवार हो जिसने अपना कोई सगा–संबंधी न खोया हो, कुछ परिवारों का तो सम्पूर्ण विनाश हो गया"।
- युद्ध का परिणाम मराठा साम्राज्य के लिए बेहद घातक रहा और उनका अखिल भारतीय मराठा साम्राज्य स्थापित करने का सपना चकनाचूर हो गया। इस पराजय के सदमें को पेशवा बालाजी बाजीराव सहन नहीं कर सका और उसकी भी मृत्यु जल्द ही हो गयी।

मराठों की पराजय के कारण

- अब्दाली का सैन्य बल संख्या की दृष्टि से मराठों से अधिक था।
- दिल्ली से संपर्क नहीं होने के कारण मराठों के शिविर में आवश्यक सामग्रियों का अभाव था और अकाल जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।
- उत्तर भारत की लगभग सभी मुस्लिम शक्तियां अब्दाली के साथ थीं जबकि आंतरिक कलह तथा मराठों की लूटपाट की नीति के कारण राजपुत, जाट एवं सिक्खों ने मराठों का साथ नहीं दिया।
- मराठा सरदारों में आपसी मतभेद की स्थिति अंत तक बनी।
- अब्दाली का बेहतर एवं कुशल सैन्य संगठन था।
- अब्दाली का योग्य नेतृत्व।

पानीपत के तृतीय युद्ध का महत्व

- मराठों की अखिल भारतीय सत्ता स्थापित करने के स्वप्न का अंत हुआ।
- मुगल सत्ता की बची – खुची प्रतिष्ठा समाप्त हुई।
- अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना में सहयोगी बना रहा।

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

2. भारत में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियां व उनके आपसी संबंध

- भारत से यूरोप का व्यापार प्राचीन काल से ही चलता रहा था तथापि मध्यकाल में कई यूरोपीय कंपनियों का गठन भारत तथा पूर्वी देशों के साथ व्यापार के उद्देश्य से किया गया। भारत में इन यूरोपीय कंपनियों का आगमन तथा इनकी गतिविधियाँ भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है।
- 15 वीं शताब्दी में यूरोप में पुनर्जागरण तथा भौगोलिक खोजों का युग था। इसी से प्रेरित होकर कई साहसी नाविकों ने नए – नए समुद्री मार्ग की खोज की जिसने विभिन्न क्षेत्रों के बीच संपर्क को बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- इन्हीं नाविकों में से एक था वास्कोडिगामा जो मई 1498 को भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कालीकट बंदरगाह पहुंचा और भारत व यूरोप के बीच एक नए समुद्री मार्ग की खोज की। कालीकट के तत्कालीन शासक जमोरिन ने वास्को – डि – गामा का गर्मजोशी से स्वागत किया और इसी के साथ भारत व पुर्तगाली व्यापार का युग प्रारंभ हुआ।

भारत में पुर्तगाली कंपनी

- वास्कोडिगामा अपने यात्रा के बाद जब वापस पुर्तगाल पहुंचा तो ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि भारतीय वस्तुओं विशेषकर मसालों के व्यापार से उसने 60 गुना अधिक मुनाफ़ा प्राप्त किया।
- पुर्तगालियों के भारत आगमन का उद्देश्य था अरब व वेनिस व्यापारियों के प्रभाव को समाप्त करना तथा ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार करना और इसमें पोप अलेक्जेंडर VI से भी उन्होंने आज्ञा पत्र प्राप्त किया था।
- वर्ष 1500 में पेट्रो अल्वारेज भारत आने वाला दूसरा पुर्तगाली यात्री था। 1503 में कोचीन में पुर्तगालियों द्वारा भारत का अपना पहला दुर्ग स्थापित किया गया।
- वर्ष 1505 में फ्रांसिस्को डी अल्मेडा भारत का पहला पुर्तगाली वायसराय बनकर आया। उसने ब्लू वाटर पॉलिसी या शांत जल की नीति अपनाई जिसका उद्देश्य था समुद्री व्यापार पर पुर्तगाली आधिपत्य को स्थापित करना।
- फ्रांसिस्को डी अल्मेडा के बाद अलफांसो डी अल्बुकर्क वर्ष 1509 में भारत में पुर्तगाली वायसराय के रूप में आया; इसे भारत में पुर्तगाली शक्ति का वास्तविक संस्थापक माना जाता है।इसने कोचीन को पुर्तगाली मुख्यालय बनाया।
- अल्बुकर्क ने 1510 में बीजापुर के सुलतान से गोवा छीन लिया। गोवा पर नियंत्रण ने दक्षिण – पश्चिम समुद्र तट पर पुर्तगाली शक्ति का प्रभुत्व स्थापित किया। इसके अतिरिक्त इसने फ़ारस की खाड़ी में स्थित होर्मुज (1515 ईस्वी) तथा दक्षिण – पूर्व एशिया के मल्लका (1511 ईस्वी) पर भी अपना अधिकार कर लिया। अल्बुकर्क द्वारा दमन व दीव में भी पुर्तगाली व्यापारिक केंद्र स्थापित किए गए।
- अल्बुकर्क द्वारा प्रशासन में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया गया। उसने कुछ स्थानीय लोगों को भी प्रशासन में शामिल किया। इसके अतिरिक्त पुर्तगाली लोगों को स्थानीय महिलाओं से विवाह को प्रेरित किया तथा ईसाई धर्म के प्रचार – प्रसार का भी काम किया।
- अल्बुकर्क द्वारा सती प्रथा पर भी प्रतिबंध लगाया गया।
- अल्बुकर्क के बाद नीनो – डी – कुन्हा पुर्तगाली वायसराय के रूप में भारत आया। इसी के द्वारा पुर्तगाली कार्यालय को कोचीन से गोवा स्थानांतरित किया गया और गोवा पुर्तगाली भारतीय क्षेत्रों की राजधानी बना।
- 1559 तक पुर्तगालियों द्वारा दमन, दीव, साल्सेट, बसीन, बंबई, हुगली तथा सेंट थोमे आदि स्थानों पर भी नियंत्रण स्थापित किया गया।
- भारत में अन्य पुर्तगाली गवर्नर वायसराय में शामिल थे :- ज़ोवा – डी – कैस्ट्रो, अल्फांसो डिसूजा आदि। 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते – आते पुर्तगाली शक्ति व प्रभाव का अवसान हो गया और उनकी पहचान समुद्री लुटेरे तक सीमित हो गयी।

पुर्तगाली शक्ति के पतन का कारण

- पुर्तगालियों की धार्मिक असहिष्णुता की नीति।
- अल्बुकर्क के अयोग्य उत्तराधिकारी।
- डचों व अंग्रेजों का विरोध तथा उनकी प्रतिस्पर्धा।
- बर्बरतापूर्ण समुद्री लूटमार की नीति का पालन।
- 1580 में पुर्तगाल का स्पेन में विलय हो गया जिससे भारत में पुर्तगाली हितों की उपेक्षा।

- ब्राजील की खोज होने पर पुर्तगालियों द्वारा भारत की तुलना में ब्राजील पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया।

अन्य तथ्य

- 1529, 1538, 1551 और 1554 में भारतीय व्यापार पर पुर्तगाली प्रभुत्व के विरुद्ध चार बार तुर्की आक्रमण हुए।
- पुर्तगाली साम्राज्य को एस्तादो द इंडिया के नाम से जाना जाता था।
- पुर्तगालियों द्वारा हिन्द महासागर क्षेत्र में सामुद्रिक व्यापार के लिए कार्टज – आर्मेडा – काफिला व्यवस्था लागू किया गया था।
- भारत में पुर्तगालियों के आगमन से गोथिक स्थापत्य कला का आगमन, प्रिंटिंग प्रेस की शुरूआत, तंबाकू की खेती शुरू हुई।
- मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म का प्रसार में भी पुर्तगालियों की प्रमुख भूमिका रही। कुछ प्रमुख ईसाई संत जैसे – सेंट फ्रांसिस जेवियर, फादर रूडोल्फ व फादर मोंसेरेटे आदि पुर्तगाली शासन काल व क्षेत्र में ईसाई धर्म प्रचार करने के लिए आए।
- ईसाई मिशनरियों द्वारा स्कूल, कॉलेज की स्थापना में तथा इतिहास और संस्कृति पर शोध में भी प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया गया।
- वर्ष 1961 में गोवा का भारत में विलय हुआ, इस समय पुर्तगाली गवर्नर जनरल मैनुएल एंटानिओ वस्सालो ए सिल्वा था। जबकि भारत की आजादी के समय गोवा का पुर्तगाली गवर्नर जोसे फेरेइरा बोस्सा था।
- पुर्तगालियों द्वारा हुगली को बंगाल की खाड़ी में लूटपाट के अड्डे के रूप में प्रयोग किया जाता था। वर्ष 1632 में मुग़ल बादशाह शाहजहां द्वारा हुगली में पुर्तगाली बस्ती को पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया था।

भारत में डचों का आगमन

- पुर्तगालियों के बाद डचों का भारत में आगमन हुआ। डच ईस्ट इंडिया कंपनी (यूनाइटेड ईस्ट इंडिया कंपनी ऑफ़ दी नीदरलैंड) की स्थापना 20 मार्च 1602 को की गयी।
- वर्ष 1596 में भारत आने वाला प्रथम डच नागरिक कार्नोलिस डेहस्तमान था। डचों द्वारा भारत में अपना पहला कारखाना वर्ष 1605 में मछलीपट्टम में खोला गया।
- पुलिकट में निर्मित डच फैक्ट्री का नाम गोल्ड्रिया रखा गया। गोल्ड्रिया भारत में डचों की एकमात्र किलाबंद बस्ती थी। पुलीकट से ही डचों द्वारा अपने स्वर्ण सिक्के पगोडा को ढ़ाला जाता था।
- बंगाल में डचों की पहली फैक्ट्री पिपली में वर्ष 1627 में स्थापित की गयी।
- वर्ष 1653 में डचों ने हुगली के निकट चिनसुरा में भी अपनी कोठी स्थापित की थी।
- 1680 में डचों द्वारा स्थापित पोर्टानोवा एक समृद्ध कपड़ा उत्पादन केंद्र था।
- भारतीय व्यापार में डचों द्वारा कपड़ों को अधिक महत्व दिया गया। इसके अतिरिक्त वे मसाले, नील, कच्चा रेशम,शोरा, चावल तथा अफीम का भी व्यापार करते थे।
- डचों द्वारा भारत से अधिक दक्षिण - पूर्वी एशिया के मसाले द्वीप पर ध्यान दिया गया जिससे भारत पर उनकी पकड़ कमजोर रही। वर्ष 1759 में बेदारा के युद्ध में अंग्रेजों से पराजित होकर भारत में डच शक्ति का पतन हो गया।
- भारत में डचों के पतन / असफलता के कारणों में शामिल किया जा सकता है : अंग्रेजों की तुलना में कमजोर नौसैनिक शक्ति, दक्षिण - पूर्वी एशिया के मसालों के द्वीपों पर अधिक ध्यान देना, बिगड़ती आर्थिक स्थिति, अत्यधिक केंद्रीकरण की नीति आदि।

भारत की प्रमुख डच फैक्ट्रियां / कोठियां :-
1. मसूलीपट्टम / मछलीपट्टम (1605)
2. पुलीकट (1610)
3. सूरत (1616)
4. चिनसुरा (1653)
5. कोचीन (1663)
6. पटना
7. कासिम बाज़ार।
8. बालासोर।

भारत ब्रिटिश कंपनी व अंग्रेजो का आगमन

- 31 दिसंबर 1600 ईस्वी को महारानी एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी (दी गवर्नर एंड कंपनी ऑफ़ मर्चेंट्स ऑफ़ लंदन ट्रेडिंग इंटू दी ईस्ट इंडीज) की स्थापना हुई।

- महारानी द्वारा इस कंपनी को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए एकाधिकार प्रदान किया गया। प्रारंभ यह एकाधिकार से संबंधित चार्टर केवल 15 वर्षों के लिए था जो आगे 20-20 वर्षों के लिए बढ़ाया जाता रहा।
- ईस्ट इंडिया कंपनी का गठन एक जॉइंट स्टॉक कंपनी के रूप में किया गया था जिसमें 217 साझीदार थे।
- वर्ष 1608 में ब्रिटेन के सम्राट जेम्स प्रथम द्वारा कैप्टन हॉकिंस को अपने दूत के रूप में भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापारिक कोठियां स्थापित करने के उद्देश्य से भेजा गया था।
- कैप्टन हॉकिंस जहांगीर के दरबार में पहुंचे थे। वर्ष 1609 में कैप्टन हॉकिंस ने सूरत में बसने व व्यापारिक कोठियां खोलने की अनुमति मांगी किन्तु पुर्तगालियों के दबाव के कारण उन्हें ये अनुमति नहीं मिली।
- वर्ष 1612 में थॉमस बेस्ट नामक अधिकारी के नेतृत्व में स्वाली के युद्ध में अंग्रेजों द्वारा पुर्तगाली बेड़े को पाराजित किया गया और 1613 में सूरत में प्रथम अंग्रेजी कारखाना स्थापित किया गया; इससे पूर्व 1611 में मसूलीपट्टम में अंग्रेजों द्वारा कारखाना स्थापित किया गया था।

कैप्टन हॉकिंस
फ़ारसी एवं तुर्की का जानकार; लगभग तीन वर्षों तक आगरा में रहा; जहांगीर द्वारा उसे 400 का मंसब तथा जागीर भी प्रदान की गयी।

- वर्ष 1615 सम्राट जैम्स प्रथम द्वारा टॉमस रो को अपने राजदूत के रूप में भारत भेजा गया, जिसने दरबार में तमाम विरोधों के बाद भी जहांगीर से व्यापारिक रियायतें प्राप्त की।

ब्रिटिश कारखाना / फैक्ट्री :-
1. मसूलीपट्टम (1611)।
2. सूरत (1613, प्रथम स्थायी कारखाना)।
3. मद्रास (1639)।
4. हुगली (1651, बंगाल में स्थापित प्रथम कोठी)।
5. ओड़िसा के बालासोर और हरिहरपुर (1633, पूर्वी भारत का पहला कारखाना)।

- वर्ष 1661 में इंग्लैण्ड के सम्राट का विवाह पुर्तगाल की राजकुमारी कैथरीन से हुआ तथा चार्ल्स को दहेज़ के रूप में बंबई प्राप्त हुआ, जिसे वर्ष 1668 में 10 पॉन्ड के किराए पर ईस्ट इंडिया कंपनी को दे दिया गया।
- गोराल्ड औंगियर को बंबई का वास्तविक संस्थापक माना जाता है, यह वर्ष 1669 – 1677 तक बंबई का गवर्नर था।
- अंग्रेजों को 1672 में शाइस्ता खां से तथा 1680 में औरंगज़ेब से व्यापारिक रियायतों के संबंध में फ़रमान प्राप्त हुए।
- वर्ष 1686 में अंग्रजों द्वारा हुगली को लूटने का प्रयास किया गया और इनका मुग़ल गवर्नर शाइस्ता खां से संघर्ष हुआ जिसमें अंग्रेज बुरी तरह से पराजित हुए और इन्हें भागकर बंगाल की खाड़ी में फुल्टा द्वीप पर शरण लेनी पड़ी। इसके बाद अंग्रेजों को सूरत, मसूलीपट्टनम सहित अन्य मुग़ल क्षेत्रों से बाहर निकालने का आदेश दिया गया, किन्तु अंग्रेजों द्वारा औरंगज़ेब से क्षमा याचना की गयी और डेढ़ लाख के मुआवज़े पर पुनः व्यापारिक अधिकार प्रदान किए गए।
- 1691 में औरंगजेब के एक फ़रमान से तीन हजार के निश्चित वार्षिक कर के बदले अंग्रेजों को बंगाल में सीमा शुल्क से छूट दी गयी।
- वर्ष 1698 में बंगाल के सूबेदार अजीमुश्शान द्वारा 12 हजार रुपए के बदले तीन गांवों की जमींदारी अंग्रेजों को प्रदान की गयी। ये गाँव थे :- सुतानाती, कालीघाट एवं गोविंदपुर। 1700 ईस्वी तक जॉब चार्नाक द्वारा इसी क्षेत्र को कलकत्ता के रूप में विकसित किया गया।चार्ल्स आयर कलकत्ता का पहला गवर्नर नियुक्त हुआ।
- वर्ष 1717 में मुग़ल बादशाह फ़र्रुखशियर द्वारा एक फ़रमान जारी करके कई व्यापारिक अधिकार प्रदान किए। इतिहासकार ओर्म्स ने इस फ़रमान को ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का मैग्नाकार्टा कहा है।

डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी

- डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना वर्ष 1616 में की गयी एवं 1620 में तमिलनाडु के ट्रेन्कोबार (त्रावणकोर) में एक व्यापारिक आउटपोस्ट स्थापित किया गया।
- डेनिस कंपनी द्वारा 1755 में बंगाल के सेरामपुर / श्रीरामपुर में फ्रेडरिकनागोर नामक कॉलोनी स्थापित की गयी। यह कॉलोनी इनके द्वारा अपने राजा फ्रेडरिक पंचम के सम्मान में स्थापित की गयी थी।
- इनके द्वारा सेरामपुर / श्रीरामपुर में बाइबल को छापने के लिए 1799 में प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की गयी।
- सेरामपुर / श्रीरामपुर में एक कॉलेज की स्थापना की गयी,

जो पश्चिमी शैली पर आधारित प्रथम उच्च शिक्षण संस्थान था।

- 1845 में डेनिस लोगों द्वारा सेरामपुर / श्रीरामपुर को अंग्रेजों को बेच कर भारत से प्रस्थान किया गया।

फ्रांसीसी कंपनी

- भारत में फ्रांसीसियों का प्रवेश सबसे अंत में हुआ। फ्रांसीसी राजा लुई – 14 वें के मंत्री कोल्बर्ट के प्रयासों से वर्ष 1664 में फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई। फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी एक सरकारी कंपनी थी।
- भारत में पहली फ्रेंच फैक्ट्री की स्थापना फ्रैंको कैरो द्वारा 1668 में सूरत में की गयी तथा दूसरी फ्रेंच फैक्ट्री की स्थापना मसूलीपट्टनम में की गयी।
- 1673 में बंगाल में फ्रांसीसियों को एक फैक्ट्री स्थापित करने की अनुमति मिली और 1690 – 92 तक बंगाल में फ्रांसीसियों की सुप्रसिद्ध फैक्ट्री चंद्रनगर स्थापित हुई।
- 1674 में फ्रांसीसियों ने बीजापुर के सुलतान से पांडिचेरी नामक गाँव प्राप्त किया, जहां प्रसिद्ध फ्रांसीसी बस्ती पांडिचेरी का विकास हुआ।
- 1693 में डचों द्वारा पांडिचेरी को छीन लिया गया था, आगे 1697 में रिज्विक समझौते के माध्यम से यह फ्रांसीसियों को वापस मिला।
- फ्रांसीसियों द्वारा 1721 में मॉरिशस, 1723 में यनम, 1725 में माहे एवं 1739 में कराईकल पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

नोट : वर्ष 1731 में स्वीडिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की गयी किन्तु इनका व्यापारिक संबंध मूलतः चीन के साथ रहा।

आंग्ल – फ्रेंच संघर्ष / कर्नाटक युद्ध

- आधुनिक भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए आंग्ल – फ्रेंच कंपनियों के मध्य प्रतिस्पर्धा जिसे हम सामान्यतः कर्नाटक युद्ध के नाम से जानते हैं।
- इसके अतिरिक्त तत्कालीन दक्षिण भारत की परिस्थितियों से दोनों कंपनियों में जगी महत्वाकांक्षा भी इस युद्ध का एक प्रमुख कारण रही थी।
- 1746 से लेकर 1763 तक दक्षिण भारत में तीन कर्नाटक युद्ध हुए जिसमें अंततः अंग्रेजों की निर्णयाक जीत हुई।
- 18वीं, 19वीं शताब्दी में आंग्ल फ्रेंच प्रतिस्पर्द्धा यूरोप सहित पूरी दुनिया में फैली हुई थी और कर्नाटक युद्ध इसी प्रतिस्पर्धा का परिणाम था।

प्रथम कर्नाटक युद्ध (1746 – 48)

- प्रथम कर्नाटक युद्ध आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध का ही भारतीय प्रसार था। आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध 1740 के दशक के प्रारंभ से ही चल रहा था और इसी के परिणामस्वरूप भारत में भी फ्रेंच व अंग्रेजी सेना आपस में युद्धरत हो गयी।
- प्रारंभ में पांडिचेरी का फ्रेंच गवर्नर डूप्ले युद्ध के पक्ष में नहीं था। उसने बातचीत के माध्यम से समाधान निकालने का प्रयास किया किन्तु कोई हल नहीं निकला।
- एक अंग्रेज अधिकारी बर्नेट द्वारा कुछ फ्रांसीसी जहाज़ों पर कब्जा कर लिया गया। इसके बाद डूप्ले ने मॉरीशस के फ्रेंच गवर्नर ला बोर्दने की सहायता से मद्रास का घेराव किया; अंततः सितंबर 1746 में मद्रास ने आत्मसमर्पण कर दिया हालांकि फ़ोर्ट सेंट डेविड पर नियंत्रण स्थापित करने में डूप्ले असफ़ल रहा।
- आस्ट्रिया का उत्तराधिकार युद्ध वर्ष 1748 में एक्स – ला – शापल की संधि से समाप्त हो गया और इसी के साथ प्रथम कर्नाटक युद्ध की भी समाप्ति हुई।
- युद्ध में हालांकि फ्रांसीसी पक्ष का पलड़ा भारी रहा तथापि यह युद्ध अनिर्णायक ही रहा। फ्रांसीसियों द्वारा कुछ शर्तों के साथ मद्रास अंग्रेजों को वापस कर दिया।
- प्रथम कर्नाटक युद्ध को इतिहास में सेंट टोमे के युद्ध के लिए भी याद किया जाता है। वर्ष 1746 में सेंट टोमे नामक स्थान पर फ्रांसीसी सेना और कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन की सेना के बीच युद्ध हुआ। युद्ध का मुख्य कारण फ्रांसीसियों द्वारा मद्रास की विजय थी।
- युद्ध में कप्तान पैराडाइज के नेतृत्व में एक छोटी सी फ्रांसीसी सैन्य टुकड़ी ने महफूज खां के नेतृत्व में नवाब के 10 हजार की सेना को पराजित किया।

द्वितीय कर्नाटक युद्ध (1749 – 54)

- कर्नाटक के द्वितीय युद्ध का मुख्य कारण हैदराबाद तथा कर्नाटक की गद्दी को लेकर उत्पन्न हुआ उत्तराधिकार का संकट था।

- इसके अतिरिक्त दोनों कंपनियों की बढ़ती महत्वाकांक्षा तथा पहले युद्ध में अनिर्णित रहे प्रश्नों का हल ढूंढना भी इस युद्ध का कारण रहा था।
- 1748 में आसफजाह निजामुलमुल्क की मृत्यु हो गयी और उसके बाद नासिरजंग को गद्दी प्राप्त हुई किन्तु उसके भतीजे मुज्जफरजंग द्वारा इसका विरोध किया गया। इसी प्रकार कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन का विरोध उसके बहनोई चंदा साहब द्वारा किया जा रहा था।
- डूप्ले द्वारा इस अवसर का लाभ उठाने के लिए हैदराबाद में मुजफ्फ़रजंग का तथा कर्नाटक में चंदा साहब का साथ देने का निर्णय लिया गया। दूसरी ओर अंग्रेजों द्वारा सत्तासीन नासिरजंग और अनवरुद्दीन का समर्थन किया गया।
- 1749 में अम्बूर के युद्ध (वेल्लोर के निकट अवस्थित) मुजफ्फ़रजंग, चंदा साहब तथा फ्रांसीसियों की संयुक्त सेना ने मिलकर अनवरुद्दीन को पराजित किया और उसकी हत्या कर दी।
- इसी प्रकार 1750 में नासिरजंग भी मारा गया। फ्रांसीसियों के लिए यह समय स्वर्णिम था। कर्नाटक तथा हैदराबाद दोनों पर फ्रांसीसी समर्थक शासक थे। मुजफ्फ़रजंग ने डूप्ले को कृष्णा नदी के दक्षिण के क्षेत्र की सुबेदारी प्रदान की। साथ ही मुजफ्फ़रजंग के आग्रह पर डूप्ले ने हैदराबाद में बूस्सी के नेतृत्व में एक सैन्य टुकड़ी भी नियुक्त किया।
- मुजफ्फ़रजंग की मृत्यु के बाद सलाबत जंग को हैदराबाद की सुबेदारी मिली और उसने फ्रांसीसियों को उत्तरी सरकार का क्षेत्र प्रदान किया।
- यह काल फ्रांसीसियों के लिए उत्कर्ष का काल था तथापि जल्द ही उनका अपकर्ष भी हो गया। इसी समय क्लाइव ने अपनी शानदार कूटनीतिक तथा सैन्य कुशलता का परिचय दिया।क्लाइव का मानना था कि अगर अर्काट का घेराव किया जाता है तो चंदा साहब दबाव में आकर त्रिचिनापल्ली का घेरा हटाने के लिए विवश होगा।1751 में क्लाइव ने अर्काट पर घेरा डाला और उसकी नीति सफल रही। यह क्लाइव की महत्वपूर्ण सफलता थी।
- इस असफलता का परिणाम फ्रांसीसियों के साथ – साथ डूप्ले के लिए व्यक्तिगत रूप से भी काफी घातक रहा। इसके बाद डूप्ले को फ्रांस वापस बुला लिया गया और उसकी जगह 1754 में गोडेहू भारत में फ्रांसीसी गवर्नर बनकर आया। डूप्ले को वापस बुलाना फ्रांसीसी कंपनी के लिए एक बड़ी रणनीतिक भूल सिद्ध हुई।
- जनवरी 1755 में गोडेहू के प्रयासों से पांडिचेरी की संधि हुई और युद्ध समाप्त हुआ। जहां द्वितीय कर्नाटक युद्ध की शुरूआत फ्रांसीसियों की सफलता के साथ हुई थी वहीं इसका अंत ब्रिटिश बढ़त के साथ हुई।

तृतीय कर्नाटक युद्ध (1758 – 63)

- कर्नाटक का तृतीय युद्ध यूरोप में शुरू हुए सप्तवर्षीय युद्ध (1756-63) का भारतीय विस्तार था। यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध में अंग्रेज व फ्रेंच आमने–सामने थे और इसके परिणामस्वरूप भारत में भी फ्रांसीसी और अंग्रेजी सेना में युद्ध प्रारंभ हो गया।
- वर्ष 1757 में फ्रांसीसी सरकार ने काउंट डी लाली को भारत इस संघर्ष से निपटने के लिए भेजा। इस समय तक अंग्रेजों को प्लासी में मिली सफलता के कारण बंगाल के संसाधन प्राप्त हुए जिससे उनकी स्थिति मजबूत हुई।
- लाली ने 1758 में फोर्ट सेंट डेविड पर अधिकार कर लिया किन्तु उसका तंजौर पर अधिकार करने का सपना पूरा नहीं हो सका; इससे लाली की व्यक्तिगत क्षमता व फ्रांस की प्रतिष्ठा को धक्का लगा।
- लाली ने एक और अदूरदर्शिता भरा कदम उठाया, उसने इस युद्ध में सहायता के लिए बुसी के नेतृत्व में हैदराबाद में तैनात सेना को भी बुला लिया। इसके परिणामस्वरूप हैदराबाद भी उसके हाथ से निकल गया।
- वर्ष 1760 में सर आयरकूट के नेतृत्व में वांडिवाश की लड़ाई में अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को बुरी तरह से पराजित किया और बुसी को कैद कर लिया गया।अंग्रेजों द्वारा न केवल पांडिचेरी बल्कि जिंजी तथा माहे पर भी कब्जा कर लिया गया। यह पराजय फ्रासिसियों के लिए निर्णायक सिद्ध हुई।
- वर्ष 1763 में हुई पेरिस की संधि से सप्तवर्षीय युद्ध का अंत हुआ और चंद्रनगर को छोड़कर भारत में भी फ्रांसीसियों के क्षेत्र उन्हें वापस कर दिए गए। यह शर्त था कि इन क्षेत्रों का वे सैन्यकरण व किलेबंदी नहीं करेंगे।

फ्रांसीसी पराजय के कारण

- फ्रांसीसी यूरोप में महाद्वीपीय विस्तार में अधिक व्यस्त थे।वे भारत के प्रति अधिक गंभीर नहीं थे।
- दोनों कंपनियों के संगठन तथा संरक्षण में भी बहुत अंतर था। फ्रांसीसी कंपनी जहां पुर्णतः राज्य पर निर्भर थी, वहीं ब्रिटिश कंपनी निजी कंपनी थी, इसके कारण निर्णय की सुगमता का लाभ मिला।
- ब्रिटिश नौसेना फ्रांसीसी नौसेना की तुलना में काफी मजबूत थी।
- बंगाल पर अधिकार के कारण ब्रिटिश कंपनी को एक बड़े संसाधन का समर्थन मिला।
- इसके अतिरिक्त ब्रिटिश कंपनी को कई योग्य व कुशल व्यक्तियों का नेतृत्व प्राप्त हुआ जबकि डूप्ले के अतिरिक्त फ्रांसीसियों को ऐसे कुशल व योग्य लोगों के समर्थन का अभाव रहा।
- डूप्ले की महत्वकांक्षा भी एक महत्वपूर्ण कारण बना फ्रांसीसियों के पराजय का। वह राजनीतिक षड्यंत्रों में इतना अधिक उलझा रहा कि फ्रांसीसी कंपनी के व्यापारिक हितों पर सही ध्यान नहीं दे सका जिससे कंपनी की आर्थिक स्थिति कमजोर हुई।

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

3. ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का भारतीय राज्यों से संबंध तथा भारत में ब्रिटिश विस्तार 1757 से 1857 तक

बंगाल पर ब्रिटिश आधिपत्य

- बंगाल मुग़ल साम्राज्य व तत्कालीन भारत का सबसे समृद्ध प्रांत था और यूरोपीय कंपनियों के साथ भारतीय व्यापार का आधे से अधिक हिस्सा बंगाल से आता था।
- मुर्शीद कुली खां से अलीवर्दी खां तक मजबूत व योग्य नवाब के समय तक ब्रिटिश कंपनी की गतिविधियाँ बंगाल में मूलतः व्यापारिक ही रही किन्तु अलीवर्दी खां की मृत्यु के बाद 1756 में जब सिराज-उद्दौल्ला नवाब बना तो परिस्थितियाँ बदल गयी और बंगाल में ब्रिटिश प्रसार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित हुई।
- सिराज - उद्दौल्ला का विरोध उसकी मौसी घसीटी बेगम व मौसेरा भाई शौक़तजंग (पूर्णिया का नवाब) के द्वारा की जा रही थी। दूसरी ओर यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध प्रारंभ हो जाने से भारत में भी फ्रेंच व ब्रिटिश कंपनी में संघर्ष की संभावना थी।
- ऐसी स्थिति में अंग्रेज व फ्रेंच जहां अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए अपने क्षेत्रों की किलेबंदी कर रहे थे, वहीं अंग्रेजों द्वारा बंगाल की स्थानीय राजनीति से लाभ लेने का प्रयास भी किया गया और इसी क्रम में अंग्रेजों ने नवाब सिराज - उद्दौल्ला के प्रमुख विरोधियों को समर्थन देना प्रारंभ किया।
- इससे क्रुद्ध होकर 15 जून 1756 को नवाब सिराज - उद्दौल्ला द्वारा फोर्ट विलियम पर हमला किया गया और अंग्रेजों को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर। इसके बाद नवाब कलकत्ता की जिम्मेदारी मानिकचंद्र को सौंप कर स्वयं वापस मुर्शिदाबाद लौट गया।

ब्लैक होल की घटना

- नवाब के इस अभियान से संबंधित एक घटना, जिसे ब्लैक होल की घटना के रूप में जाना जाता है की चर्चा मिलती है। इस घटना के सन्दर्भ में ऐसा माना जाता है कि नवाब द्वारा गिरफ्तार किए गए अंग्रेजों में से 146 अंग्रेजों को (महिलाओं, बच्चों सहित 20 जून 1756 की रात को एक संकड़े कमरे में बंद कर दिया गया था जिसमें दम घुटने से 123 लोगों की मृत्यु हो गयी और 23 लोग ही जीवित बाहर आए।
- ब्लैक होल की इस घटना की चर्चा हॉलवेल द्वारा की गयी है जो जीवित बचे 23 लोगों में से एक था। हालांकि अधिकांश इतिहासकार इस ब्लैक होल की घटना की सत्यता को संदिग्ध मानते हैं क्योंकि अन्य किसी भी समकालीन लेखक द्वारा इसकी चर्चा नहीं मिलती है।
- इतिहास में ब्लैक होल की घटना का महत्व केवल इतना है कि इसने अंग्रेजों के आगे की आक्रामक नीति के लिए एक उत्तेजित आधार निर्मित किया।

प्लासी का युद्ध (23 जून 1757 ईस्वी)

- कलकत्ता पर नवाब का आक्रमण को प्लासी के युद्ध की पूर्व पीठिका माना जाता है। अंग्रेजों द्वारा मद्रास से क्लाइव और वाटसन को कलकत्ता भेजा गया।
- जनवरी 1757 में कलकत्ता पर अंग्रेजों ने पुनः कब्जा कर लिया और नवाब को संधि के लिए मजबूर किया।
- फ़रवरी 1757 में नवाब व अंग्रेजों के बीच अलीनगर की संधि हुई और अंग्रेजों के अधिकार पुनः बहाल हुए, जैसे किलाबंदी का अधिकार।
- इस समय नवाब आंतरिक समस्याओं से घिरा था तथा उसे अहमदशाह अब्दाली एवं मराठों के आक्रमण का भय इसलिए उसने अंग्रेजों से संधि करना उचित समझा।
- इसके बाद क्लाइव द्वारा नवाब से असंतुष्ट लोगों के साथ मिलकर नवाब सिराज उदौला को हटाने का एक षडयंत्र रचा गया। इसमें शामिल था बंगाल का सेनापति मीर जाफर साहूकार जगत सेठ, मानिकचन्द्र, राय दुर्लभ तथा अमिन चन्द्र आदि।
- इस बीच अंग्रेजों द्वारा फ्रांसीसी बस्ती चन्द्रनगर पर भी कब्जा कर लिया गया, जो सीधे सीधे नवाब की संप्रभुता को - चुनौती थी। इसके परिणामस्वरूप अब युद्ध निश्चित था और 23 जून 1757 को प्लासी नामक स्थान पर नवाब व अंग्रेजों की सेना आमने - सामने थी।

- सैन्य दृष्टिकोण से इस युद्ध का कोई महत्व नहीं है क्योंकि युद्ध का परिणाम पहले से षडयंत्र द्वारा तय था। मीरजाफर के नेतृत्व में एक बड़ी सेना युद्ध में निष्क्रिय रही। मीर मदान व मोहनलाल के नेतृत्व में नवाब की एक सैन्य टुकड़ी बहादुरी से लड़ी किन्तु मीर जाफर द्वारा पुनः गलत सलाह देकर नवाब को युद्ध में पीछे हटने को कहा गया और अंततः नवाब को पराजित होना पड़ा, जो पहले से ही तय था। सिराज - उदौला की हत्या मीरजाफर के बेटे मीरन द्वारा कर दी गयी।

सिराज - उदौला के पराजय के कारण

- सिराज - उदौला की अदूरदर्शिता एवं अयोग्यता; उसने अंग्रेजों की क्षमता का वास्तविक आंकलन करने में भूल की।
- क्लाइव की कूटनीति और बंगाल के दरबारियों का षडयंत्र जिससे क्लाइव ने सभी महत्वपूर्ण अधिकारियों व धनाढ्य व्यक्तियों को अपनी ओर मिला लिया।
- अंग्रेजों की बेहतर सैन्य कुशलता एवं नेतृत्व हालांकि प्लासी के युद्ध में सैन्य क्षमता की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रही।
- बंगाल या भारत में इस समय राष्ट्रीय एकता या राजनीतिक एकता का कोई तत्व नहीं था जिसका अंग्रेजों द्वारा भरपूर लाभ उठाया गया।

प्लासी के युद्ध का परिणाम

- इस युद्ध से अंग्रेजों को अत्यधिक आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ। न केवल कंपनी को बल्कि क्लाइव सहित प्रमुख अधिकारियों को भी कई उपहार एवं रुपए की प्राप्ति हुई।
- कंपनी को 24 परगना की जमींदारी प्राप्त हुई।
- बंगाल में कंपनी का सम्पूर्ण व्यापार कर मुक्त कर दिया गया, इतना ही नहीं कंपनी के अधिकारियों को भी कर मुक्त व्यापार का अधिकार मिला।
- प्लासी के युद्ध के बाद भारत से धन की निकासी की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। अंग्रेजों द्वारा भारतीय धन से ही भारतीय उत्पादों को ख़रीद कर यूरोप भेजा जाने लगा।
- बंगाल के समृद्ध संसाधनों ने कर्नाटक के तृतीय युद्ध में अंग्रेजों को फ्रांसीसियों के विरुद्ध सफलता दिलाने में मदद की। बंगाल से अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को लगभग बेदखल कर दिया और वे आगे कभी बंगाल में अपना कोई प्रभाव स्थापित नहीं कर सके।
- अंग्रेजों द्वारा मीरजाफर को नवाब बनाया गया।
- अब अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी केवल एक व्यापारिक निकाय ही नहीं रही बल्कि एक प्रमुख राजनीतिक व सैनिक शक्ति के रूप में स्वयं को स्थापित किया।

मीर कासिम एवं बक्सर का युद्ध

- मीर जाफर द्वारा अंग्रेजों के हितों की पूर्ति में असमर्थता के कारण 1760 में बंगाल के गवर्नर वेंसिटार्ट द्वारा मीर जाफर के स्थान पर मीर कासिम को नवाब बनाया गया।
- नवाब बनने के बदले मीर कासिम ने अंग्रेजों को बर्धमान मिदनापुर एवं चटगाँव की जमींदारी प्रदान की।
- इसके अतिरिक्त रूपये तथा कई अन्य रियायतें भी कंपनी को प्रदान की गयी।
- अलीवर्दी खां के बंगाल के नवाब के पद पर बैठने वालों में मीर कासिम सर्वाधिक योग्य व्यक्ति था। उसने मुर्शिदाबाद के षडयंत्रकारी वातावारण से दूर मुंगेर में अपनी राजधानी स्थापित की।
- अपनी सेना का यूरोपीय ढंग से पुनर्गठन करने का प्रयास किया; इसी क्रम में मुंगेर में बंदूक व तोप की फैक्ट्री स्थापित की।
- इसने षडयंत्र कर रहे बिहार के उपसूबेदार राम नारायण, जिसे अंग्रेजों का भी समर्थन प्राप्त था की हत्या करवा दी 1
- इसने खिजरी जमा नामक एक कर प्राप्त किया जो अभी तक अधिकारियों द्वारा छुपाया जाता था।
- इस प्रकार अपने तमाम प्रयासों से मीर कासिम ने अपनी आर्थिक स्थिति व सैन्य स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयास किया
- और यही अंग्रेजों के साथ विवाद का कारण बना क्योंकि अंग्रेज बंगाल की गद्दी पर एक कठपुतली नवाब चाहते थे।
- अंग्रेजों और मीर कासिम के बीच विवाद का मुख्य कारण बना दश्तक (बिना चुंगी के व्यापार का अधिकार) का दुरूपयोग। कासिम ने देखा कि अंग्रेज गुमाश्ते दश्तक का दुरूपयोग कर रहे हैं। अंग्रेज अधिकारी पैसे लेकर दश्तक को भारतीय व्यापारियों को भी बेचते थे, इससे चुंगी के रूप में नवाब को मिलने वाला धन की हानि होती थी।
- ऐसी स्थिति में परेशान होकर नवाब ने आंतरिक व्यापार से सभी कर / चुंगी हटा दिया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय व्यापारी और अंग्रेज व्यापारी एक ही स्थिति में आ गए। यह

अंग्रेजों को स्वीकार नहीं था और यही आगे चलकर बक्सर के युद्ध का मूल कारण बना।

बक्सर का युद्ध

- 1763 से ही बक्सर के युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी और बक्सर के युद्ध से पूर्व मीर कासिम तथा अंग्रेजों के बीच
- कई झड़पें हुई जिसमें पराजित होने के बाद मीर कासिम भाग कर अवध में शरण लिया।
- इस समय अवध में मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय भी थे और इन्होंने ने मिलकर अंग्रेजों को बंगाल से बाहर करने का निर्णय लिया। बक्सर के युद्ध में एक ओर बंगाल का विस्थापित नवाब मीर कासिम, अवध का नवाब शुजाउदौला तथा मुग़ल सम्राट शाह आलम द्वितीय और इन तीनों की संयुक्त सेना ने मिलकर अंग्रेजी सेना से युद्ध किया।
- युद्ध में अंग्रेजी सेना का प्रतिनिधित्व सर हेक्टर मुजरो द्वारा किया गया और 22 अक्टूबर 1764 को एक आमने सामने के युद्ध में अंग्रेजों की जीत हुई। यद्यपि युद्ध से पूर्व अंग्रेजों ने अवध की सेना से असद खां, साहूमल (रोहतास का सूबेदार) एवं जैनूल आबदीन को अलग करने में सफलता पायी। फिर भी यह युद्ध प्लासी की तुलना में अंग्रेजी रण कौशल के स्पष्ट श्रेष्ठता को दर्शाता है।

बक्सर के युद्ध का महत्व

- बक्सर का युद्ध भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना में निर्णायक सिद्ध हुआ और इसने प्लासी के विजय की मजबूत पुष्टि की।
- जहां प्लासी विश्वासघात एवं कूटनीति के बल पर जीता गया था वहीं बक्सर अंग्रेजी सैन्य श्रेष्टता के प्रदर्शन पर।
- इस युद्ध में विजय ने पूर्वी व उत्तर भारत की महत्वपूर्ण शक्तियों को अंग्रेज का अधीनस्थ बना दिया और मुग़ल बादशाह भी अंग्रेजों का कृपापात्र व पेंशनधारक बन गया।
- दिल्ली व आगरा तक पहुँच के रास्ते अब अंग्रेजों के लिए खुल गए।
- बंगाल एवं अवध ने पुनः नवाब को कभी चुनौती नहीं दी।

बक्सर के युद्ध के बाद

- बक्सर के युद्ध से पूर्व 1763 में ही अंग्रेजों ने मीर कासिम के स्थान पर मीर जाफर को पुनः बंगाल का नवाब बना दिया था और आगे फ़रवरी 1765 में मीर जाफर की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने उसके पुत्र नजमुदौला को नवाब बनाया।
- बक्सर के युद्ध के बाद अंग्रेजों ने 1765 में इलाबाद की संधि की और इलाहाबाद की संधि में क्लाइव की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी।

इलाहाबाद की संधि के मुख्य प्रावधान

- मुग़ल सम्राट शाह आलम द्वितीय से बंगाल, बिहार और ओड़िशा की दीवानी आधिकारिक रूप से अंग्रेजी कंपनी को प्राप्त हुई।
- इसके बदले कंपनी ने मुग़ल सम्राट को 26 लाख रुपए वार्षिक पेंशन देना स्वीकार किया।
- अवध से इलाहाबाद, कड़ा एवं मानिकपुर को छीनकर मुग़ल बादशाह को दे दिया गया।
- युद्ध हर्जाने के रूप में कंपनी ने अवध के नवाब से 50 लाख रूपये प्राप्त किए।
- अवध की सुरक्षा के लिए अवध के खर्च पर एक अंग्रेजी सेना को अवध में रखने का प्रावधान किया गया।

अवध को ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र में शामिल नहीं करने के कारण

- एक बड़े भूभाग पर प्रत्यक्ष कब्जा करने से उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी अंग्रेजों पर आ जाती जिसके लिए अंग्रेज तैयार नहीं थे।
- अवध को शामिल करने से मराठों व अब्दाली के आक्रमण का ख़तरा उत्पन्न होता।
- अवध को एक बफ़र राज्य के रूप में रखकर लाभ लेना संभव था।
- संधि के बाद शुजाउदौला कंपनी का एक वफ़ादार सहयोगी बना।

बंगाल में द्वैध शासन व्यवस्था

- बक्सर के युद्ध व इलाहाबाद की संधि के बाद क्लाइव ने बंगाल (बिहार और ओडिशा सहित) में द्वैध शासन की स्थापना की इसके तहत दीवानी अर्थात राजस्व का अधिकार कंपनी के पास था जबकि निजामत अर्थात प्रशासन का अधिकार नवाब के पास था।
- यधपि कहने को निजामत का अधिकार नवाब के पास था किन्तु वास्तविक अधिकार कंपनी के पास ही था क्योंकि

नवाब को नायब सूबेदार की सलाह से शासन चलाना था और नायब सूबेदार की नियुक्ति कंपनी द्वारा की जाती थी।

- यह व्यवस्था 1765 से लेकर 1772 तक बंगाल में चलता रहा।
- राजस्व वसूलने के लिए भी क्लाइव द्वारा दीवान की नियुक्ति की गयी। बंगाल के दीवान मुहम्मद रजा खां नियुक्त हुए जबकि बिहार के दीवान राजा शिताब राय।

क्लाइव द्वारा द्वैध शासन अपनाने के का कारण

- क्लाइव नवाब के पद को मुखौटे के रूप में प्रयोग करना चाहता था क्योंकि सीधे सत्ता की बागडोर अपने हाथ में लेने से अंग्रेजों का वास्तविक चेहरा सबके सामने आ जाता और इसके परिणामस्वरूप भारतीय शासक इसके खिलाफ एकजुट हो जाते।
- कंपनी का मुख्य लक्ष्य था व्यापार के माध्यम से मुनाफ़ा कमाना और प्रत्यक्ष शासन के बिना भी यह लक्ष्य प्राप्त हो रहा था।
- कंपनी को प्रशासन का अनुभव नहीं था, बंगाल की सत्ता पर प्रत्यक्ष नियंत्रण करने के लिए बड़ी संख्या में प्रशिक्षित अंग्रेज अधिकारी चाहिए था जिसका उस समय अभाव था।
- प्रत्यक्ष सत्ता हासिल करने से विभिन्न यूरोपीय कंपनियां ब्रिटिश कंपनी के विरुद्ध एकजुट हो सकती थी। साथ ही इस बात की भी संभावना थी कि यूरोपीय कंपनियां अंग्रेजी कंपनी को चुंगी का भुगतान करने से मना कर दे।
- कंपनी के निदेशकों की रूचि उस समय क्षेत्रीय अधिग्रहण की बजाय वित्तीय एवं व्यावसायिक लाभ में अधिक थी और द्वैध शासन से कंपनी के हितों की पूर्ति बेहतर ढंग से हो रही थी।
- प्रत्यक्ष शासन से कंपनी में ब्रिटिश संसद का हस्तक्षेप भी बढ़ सकता था।

द्वैध शासन का प्रभाव

- द्वैध शासन ने पुरे बंगाल की व्यवस्था को एक प्रकार से चौपट कर दिया। नवाब के पास क़ानून लागू करने और न्याय प्रदान करने का अधिकार तो था किन्तु इसके लिए न तो शक्ति थी और न ही संसाधन।
- ग्रामीण इलाकों में डाकू एवं अन्य अपराधियों ने अपना कब्जा बना लिया था और उसे रोकने के लिए कोई सत्ता नहीं थी।
- लगान को बढ़ा - चढ़ाकर लागू किया जाता था और कठोरता से वसूला जाता था जिससे किसानों को काफी हानि हुई एवं कृषि में गिरावट हुई।
- बंगाल में 1770 का भयंकर अकाल द्वैध शासन की भयावहता को बताता है।
- वाणिज्य - व्यापार का भी पतन हुआ।
- बंगाल के समाज का नैतिक पतन हुआ।
- अंततः 1772 में वारेन हेस्टिंग्स द्वारा द्वैध शासन को समाप्त किया गया।

क्लाइव

- 1725 में जन्म एवं 1742 में कंपनी में एक क्लर्क के रूप में नियुक्त हुआ।
- 1751 में सेना में कैप्टन बना एवं 1757 60 तक बंगाल - का गवर्नर रहा। बक्सर के युद्ध के बाद दोबारा 1765 में गवर्नर बना एवं 1767 में इंग्लैण्ड लौटने से पूर्व तक गवर्नर रहा।
- 1774 में क्लाइव ने आत्महत्या कर ली।
- क्लाइव के विरुद्ध 1765 में सैनिकों का विद्रोह हुआ जिसे श्वेत विद्रोह कहते हैं। इस विद्रोह का कारण था क्लाइव द्वारा बंगाल के सैनिकों का दोहरा भत्ता पर रोक लगाना।
- क्लाइव द्वारा निजी व्यापार तथा उपहार पर रोक लगाया गया एवं सोसाइटी ऑफ़ ट्रेड का गठन किया गया।
- क्लाइव ने अपने कार्यों से भारत में ब्रिटिश शासन की नींव डाली।

आंग्ल – मैसूर संबंध

- मैसूर पर वडयार वंश के शासक चिक्का कृष्ण राज को विस्थापित कर वर्ष 1761 हैदर अली ने अपना अधिकार जमाया।
- यद्यपि हैदर अली निरक्षर था किन्तु उसकी सैनिक एवं राजनीतिक योग्यता अद्वितीय थी। हैदर ने फ्रांसीसियों के साथ बेहतर संबंध स्थापित किया था, वह अंग्रेजों से भी सहयोग चाहता था किन्तु अंग्रेज इसके लिए तैयार नहीं क्योंकि हैदर अंग्रेजी प्रसार की महत्वाकांक्षा के विरूद्ध था।
- हैदर की योग्यता, कूटनीतिक सूझबूझ एवं सैन्य कुशलता मराठों, निजाम एवं अंग्रेजों के लिए ईर्ष्या का विषय था और इसी पृष्ठभूमि में प्रथम आंग्ल- मैसूर युद्ध हुआ।

प्रथम आंग्ल - मैसूर युद्ध (1767 - 69)

- अप्रैल 1767 में निजाम एवं मराठों के साथ मिलकर अंग्रेजों ने हैदर अली पर आक्रमण कर दिया। हैदरअली ने कूटनीतिक सूझबूझ से मराठों एवं निजाम को इस मोर्चे से अलग कर दिया।
- अंग्रेजों को कुछ प्रारंभिक सफलता मिली लेकिन फिर हैदर ने कड़े प्रतिरोध से बाजी पलट दी और अंततः डेढ़ वर्षों के अनिर्णायक युद्ध के बाद दोनों पक्ष संधि के लिए तैयार हुए।
- मद्रास की संधि (अप्रैल 1769) से युद्ध की समाप्ति हुई। यह एक प्रतिरक्षात्मक संधि थी। दोनों पक्षों ने एक दूसरे के जीते हुए क्षेत्र वापस किए लेकिन हैदर ने करूर का क्षेत्र वापस नहीं किया।
- अंग्रेजों द्वारा किसी अन्य पक्ष द्वारा हैदर पर आक्रमण की स्थिति में उसकी रक्षा का वादा किया।

द्वितीय आंग्ल मैसूर युद्ध (1780 - 84)

- अंग्रेजों द्वारा मद्रास की संधि का अनुपालन नहीं किया गया। 1770 में जब मराठा पेशवा माधवराव द्वारा हैदर पर आक्रमण किया गया तो हैदर द्वारा अंग्रेजों से सहायता मांगी गयी लेकिन अंग्रेजों ने कोई सहायता नहीं दिया।
- आगे 1779 में अंग्रेजों ने हैदर के क्षेत्र में स्थित एक छोटी फ्रांसीसी बस्ती माहे पर अंग्रेजों ने कब्जा किया तो हैदर ने युद्ध का निर्णय लिया और 1780 में युद्ध प्रारंभ हो गया। इस बार हैदर ने निजाम व मराठों को अपने गुट में शामिल करने में सफलता पायी थी।
- हैदर को प्रारंभिक सफलता मिली और उसने कर्नल बेली को पराजित करते हुए अर्काट पर अधिकार कर लिया।
- इसके बाद गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने आयरकूट को भेजा जिसने अपनी कूटनीति से मराठा व निजाम को ब्रिटिश विरोधी गुट से अलग करने में सफलता प्राप्त की।
- इसके बाद भी हैदर ने मजबूती से अंग्रेजों का मुकाबला किया किन्तु 1781 में पोर्टोनोवा के युद्ध में आयारकूट ने हैदर को पराजित कर दिया।
- दिसंबर 1782 में हैदर की मृत्यु हो गयी और उसके बाद हैदर के पुत्र टीपू सुल्तान ने संघर्ष जारी रखा तथापि दोनों शक्ति युद्ध समाप्त करना चाहते थे इसलिए 1784 में मंगलौर की संधि से द्वितीय आंग्ल- मैसूर युद्ध की समाप्ति हुई।

तृतीय आंग्ल - मैसूर युद्ध (1790 - 92)

पृष्ठभूमि

- तृतीय आंग्ल - मैसूर युद्ध की पृष्ठभूमि को समझने के लिए हमें टीपू के सुधार व कार्यों को समझना होगा।
- मैसूर की सत्ता संभालने के बाद टीपू ने महत्वपूर्ण कूटनीतिक सैनिक व आर्थिक सुधार हेतु कदम उठाए। इसने तुर्की, फ्रांस, अफगानिस्तान आदि देशों में दूत भेजकर संपर्क स्थापित करने का प्रयास किया।
- टीपू की यह सोच थी कि किसी राज्य की सैनिक शक्ति उसकी आर्थिक शक्ति पर निर्भर करती है, इसलिए उसने राज्य की आर्थिक दशा में सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए।
- इसने यूरोपीय कंपनियों के समान ही व्यापार के लिए प्रयास किए और विभिन्न देशों में अपने व्यापारिक प्रतिनिधि नियुक्त किए।
- मैसूर के अंतर्गत मसालों के व्यापार पर राज्य का एकाधिकार स्थापित किया।
- राज्य के भीतर कागज़ के कारखाने स्थापित किए। तोप, बंदूक आदि के कारखाने भी
- इसी प्रकार टीपू ने भूराजस्व वसूली की प्रक्रिया में भी सुधार किया और मध्यस्थों को अलग कर किसानों से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने का प्रयास किया।
- टीपू ने सैन्य क्षेत्र में भी सुधार किए। उसने फ्रांसीसियों की मदद से सेना का आधुनिकीकरण किया और सेना में अनुशासन तथा आधुनिक अस्त्र शस्त्र के माध्यम से अपनी सेना को यूरोपीय स्वरुप देने का प्रयास किया। -
- नौसैनिक क्षमता के विकास के लिए डॉकयार्ड का निर्माण किया तथा नौसेना बोर्ड का गठन किया।
- इसने ब्रिटिश विरोधी राष्ट्रों के साथ निरंतर संपर्क स्थापित करने का प्रयास किया। 1790 के दशक में जब यूरोप में नेपोलियन का उदय हुआ तो इसने उससे भी संपर्क स्थापित करने का प्रयास किया।
- टीपू पर फ्रांस की क्रांति का भी प्रभाव था, उसने अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टनम में स्वतंत्रता की याद में वृक्ष लगाए। साथ ही वह जैकोबियन क्लब का सदस्य भी बना।
- कई अंग्रेज अधिकारीयों का मानना था कि टीपू के किसान व सैनिक उसके लिए जितने वफ़ादार हैं उतना दुनिया में कोई नहीं।

- इस प्रकार हम देखते हैं कि टीपू तत्कालीन भारत में अंग्रेजों के लिए सबसे खतरनाक शत्रु के रूप में उभर रहा था क्योंकि आधुनिक विचारों व आधुनिक सुधारों वाला कोई भी शासक भारत में अंग्रेजी हितों के लिए सबसे कठिन चुनौती उत्पन्न कर सकता था।
- इसी पृष्ठभूमि में हमें टीपू व ब्रिटिश संबंधों को देखने का प्रयास करना चाहिए।

तृतीय - आंग्ल मैसूर युद्ध घटनाक्रम (1790 92)

- लार्ड कार्नवालिस 1786 में गवर्नर जनरल बनकर भारत आया और उस पर 1784 के पिट्स इंडिया एक्ट का दबाव था। उसे भारत में प्रतिरक्षात्मक उद्देश्यों को छोड़कर युद्ध एवं विजय की नीति से बचने को कहा गया था किन्तु मैसूर की परिस्थिति में वह ज्यादा समय तक इन आदेशों का पालन नहीं कर सका।
- इस युद्ध की शुरूआत टीपू व त्रावणकोर के बीच झगडे से हुई। दरअसल इस झगडे की शुरूआत उस समय हुई जब त्रावणकोर के महाराज ने कोचीन रियासत में स्थित जैकोटे तथा क्रागानूर को खरीदने का प्रयास किया क्योंकि टीपू कोचीन को अपने अधीन मानता था इसलिए उसने त्रावणकोर के इस प्रयास को अपनी सत्ता में हस्तक्षेप माना और उस पर आक्रमण कर दिया।
- कार्नवालिस ने टीपू पर यह आरोप लगा कर आक्रमण कर दिया कि वह फ्रांसीसियों के साथ सांठ गाँठ कर रहा है - और अंग्रेजों के मित्र राज्य पर आक्रमण कर रहा है और 1790 में युद्ध प्रारंभ हो गया।
- युद्ध से पूर्व अंग्रेजों ने निजाम व मराठों के साथ मैत्री संधि कर उसे अपनी ओर मिला लिया, इसे त्रिगुट संधि के रूप में भी जाना जाता है।
- टीपू को प्रारंभ में काफी सफलता मिली और उसने मद्रास के गवर्नर मीडोज के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना को बुरी तरह पराजित किया।
- इसके बाद कार्नवालिस स्वयं युद्ध में शामिल हो गया किन्तु ख़राब परिस्थितियों के कारण उसे वापस हटना पड़ा जिससे कार्नवालिस की काफी आलोचना हुई।
- अंततः कार्नवालिस ने 1791 में पुनः पूरी तैयारी के साथ टीपू पर आक्रमण किया और टीपू को पराजित करते हुए श्रीरंगपट्टनम की संधि के लिए विवश किया।
- मार्च 1792 में श्रीरंगपट्टनम की संधि हुई और संधि की शर्तों के अनुसार टीपू को अपना आधा राज्य तथा तीन करोड़ रूपये युद्ध के हर्जाने के रूप में देना पड़ा। साथ ही जब तक रूपये का भुगतान नहीं कर दिया जाता तब तक अपने दोनों पुत्रों को बंधक के रूप में कार्नवालिस के शिविर में रखने को बाध्य होना पड़ा।
- इस संधि से अंग्रेजों को बारामहल, डिंडीगुल तथा मालाबार का क्षेत्र मिला। इसके अतिरिक्त मराठों एवं निजाम को भी कुछ क्षेत्र प्राप्त हुए।
- इस संधि मैसूर को आर्थिक एवं सामरिक रूप से कमजोर बना दिया।
- इस युद्ध के बाद कार्नवालिस ने घोषणा की कि "मैंने अपने मित्रों को शक्तिशाली बनाए बिना ही अपने शत्रु को कमजोर कर दिया"। इस कथन का तात्पर्य यह है कि तृतीय युद्ध ने जहां मैसूर को एकदम पंगु बना दिया वहीं मराठों व निजाम को इससे कोई विशेष लाभ नहीं प्राप्त हुआ।

चतुर्थ आंग्ल-मैसूर युद्ध (1799)

- इस युद्ध के समय ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली था। उसने टीपू पर फ्रांसीसियों के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध षडयंत्र का आरोप लगाकर फ़रवरी 1799 में आक्रमण कर दिया।
- युद्ध में निजाम व मराठों ने पुनः अंग्रेजों का साथ दिया। युद्ध के दौरान लड़ते हुए 04 मई 1799 को टीपू की मृत्यु।
- अंग्रेजों द्वारा टीपू के अधिकांश राज्य को अपने में मिला लिया गया कुछ भाग निजाम को भी मिला एवं मैसूर के एक छोटे से क्षेत्र पर वाडियार वंश के उत्तराधिकारी को बिठा दिया गया और मैसूर पर सहायक संधि थोप दी गयी।

टीपू की पराजय के कारण

- टीपू के पास अंग्रेजों की तुलना में सीमित संसाधन।
- टीपू को मराठों एवं निजाम से सहायता नहीं मिली और ये दोनों शक्तियां अंग्रेजों की सहयोगी बनी रही।
- अंग्रेजों की बेहतर कूटनीति भी टीपू की पराजय का एक कारण बना।

आंग्ल मराठा संबंध

- अधिकांश भारतीय राज्यों की तरह मराठे भी आपसी कलह के कारण अंग्रेजी विस्तार के जाल में फंसते चले गए और तीन आंग्ल मराठा युद्धों के बाद इनके अधिकांश क्षेत्र भी अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया।

प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध (1775 - 82)

- इस युद्ध का कारण मराठा सरदारों के बीच आपसी झगड़ा एवं अंग्रेजी महत्वाकांक्षा थी।
- इस युद्ध के समय ब्रिटिश गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स था
- 1772 में पेशवा माधवराव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र नारायण राव अपने चाचा रघुनाथ राव (राघोवा) जो स्वयं पेशवा बनना चाहता था के षडयंत्रों का शिकार बना और उसकी हत्या कर दी गयी।
- इसके बाद नारायण राव के नवजात पुत्र माधवराव को नारायण द्वितीय के नाम से पेशवा बनाया गया। पेशवा की अल्पायु के कारण मराठा राज्य की देख रेख बारभाई नाम की 12 सदस्यों की एक परिषद द्वारा किया जाता था। इस परिषद के प्रमुख सदस्यों में सखाराम बापू, महादजी सिंधिया एवं नाना फड़नवीस जैसे लोग शामिल थे।
- माधवराव नारायण को पेशवा बनाए जाने से रघुनाथ राव हताश हो गया और वह अंग्रेजों की शरण में चला गया और 1775 में अंग्रेजों के साथ सूरत की संधि कर ली।
- इस संधि के प्रावधानों के अनुसार अंग्रेजी कंपनी ने रघुनाथ राव को पेशवा बनाना स्वीकार किया एवं इसके बदले कंपनी को सालसेट तथा बसीन का क्षेत्र प्राप्त होता।
- इस संधि के बाद रघुनाथ राव अंग्रेजी सेना के सहयोग से पूना पर आक्रमण के लिए आगे बढ़ा और अर्रास नामक स्थान पर एक झड़प हुई जो अनिर्णायक रहा।
- कलकत्ता की परिषद ने सूरत की संधि को अस्वीकार करते हुए पेशवा के संरक्षक नाना फड़नवीस के साथ 1776 में पुरंदर की संधि की जिसके अनुसार यह तय हुआ कि अंग्रेजी कंपनी रघुनाथ राव का साथ नहीं देगी किन्तु सालसेट एवं थाने का क्षेत्र कंपनी के पास रहेगा। इस संधि से दोनों दलों के बीच शांति स्थापित हो गयी।
- पुरंदर की संधि निरर्थक सिद्ध हुई क्योंकि लंदन में बोर्ड ऑफ़ डाइरेक्टर्स ने सूरत की संधि को अधिक लाभकारी पाया। साथ ही बंबई की परिषद भी पुरंदर की संधि के बजाय सूरत की संधि को बेहतर मान रही थी, इसलिए उसने भी पुरंदर की संधि को अस्वीकार कर दिया।
- आगे बंबई से कंपनी की सेना और पेशवा की सेना के बीच बड़गाँव नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेजी सेना बुरी तरह पराजित हुई और उन्हें 1779 में बड़गाँव की संधि करनी पड़ी। यह अंग्रेजों के लिए काफी अपमानजनक संधि थी क्योंकि उन्हें 1773 के बाद जीते गए अपने सभी मराठा क्षेत्र अंग्रेजों को वापस करने थे।
- ऐसी स्थिति में वारेन हेस्टिंग्स ने इस संधि को अस्वीकार करते हुए युद्ध जारी रखा और 1780 में अहमदाबाद एवं ग्वालियर को जीतने में कंपनी सफल रही। अंततः सिंधिया की मध्यस्थता से अंग्रेजों एवं मराठों के बीच संधि के लिए वार्ता हुई और मई 1782 में दोनों पक्षों के बीच 17 सूत्री सालबाई की संधि हुई और 7 वर्षों बाद प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध का अंत हुआ।
- संधि के प्रावधानों के अनुसार दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के जीते गए क्षेत्रों को लौटाने का वादा किया केवल सालसेट एवं एलीफेंटा के क्षेत्र अंग्रेजों को मिले।
- अंग्रेजों ने माधवराव नारायण को पेशवा स्वीकार किया तथा पेशवा द्वारा रघुनाथ राव को पेंशन देना स्वीकार किया गया। सालबाई की संधि के बाद अंग्रेजों व मराठों में लगभग 20 वर्षों तक शांति बनी रही।

द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध (1803 - 05)

- आंग्ल मराठा संघर्ष का दूसरा चरण मूलतः नेपोलियन के - भय से प्रेरित था। वर्ष 1798 में लार्ड वेलेजली गवर्नर जनरल के रूप में भारत आया, उसने साम्राज्यवादी प्रसार की नीति अपनाई और सभी भारतीय राज्यों को कंपनी पर निर्भर बनाने का प्रयास किया। इसके माध्यम से वह भारत में ब्रिटिश राज्य को नेपोलियन से सुरक्षित रख सकता था। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वेलेजली ने सहायक संधि की प्रणाली विकसित की।
- मराठे हालांकि प्रारंभ में सहायक संधि से स्वयं को बचाने में सफल रहे किन्तु आपसी कलह के कारण वे इसमें फंसते चले गए।
- मराठा परिषद में महादजी सिंधिया एवं नाना फड़नवीस में

प्रतिद्वंदिता थी जिससे मराठों की आंतरिक स्थिति कमजोर हुई। 1795 में पेशवा माधवराव नारायण ने आत्महत्या कर ली। इसके बाद रघुनाथ राव का पुत्र बाजीराव द्वितीय पेशवा बना।

- बाजीराव द्वितीय एक अयोग्य व स्वार्थी व्यक्ति था, उसके कृत्यों से मराठा सरदारों के बीच झगड़े बढ़े और इसी कारण अंततः उसे भागकर अंग्रेजों की शरण में जाना पड़ा। अंग्रेजों ने 31 दिसंबर 1802 को पेशवा बाजीराव द्वितीय के साथ बसीन की संधि की। यह एक सहायक संधि थी और इसे अंग्रेजों द्वारा मराठों के साथ की गयी प्रथम सहायक संधि माना जाता है।
- बसीन की संधि के प्रावधानों के अनुसार, पेशवा ने अंग्रेजी संरक्षण स्वीकार कर भारतीयों तथा अंग्रेजी पद्धति पर आधारित एक सेना को पूना में रखना स्वीकार किया।
- पेशवा ने सूरत नगर को कंपनी को दे दिया।
- पेशवा ने निजाम से चौथ प्राप्त करने का अधिकार कंपनी को दिया और अपने विदेशी मामले कंपनी के अधीन कर दिया।
- पेशवा ने गुजरात, ताप्ति तथा नर्मदा के मध्य का प्रदेश एवं तुंगभद्रा नदी के समीपवर्ती प्रदेश, जिनकी कुल आय लगभग 26 लाख थी, कंपनी को दे दिए।
- पेशवा ने निजाम तथा गायकवाड़ के साथ अपने झगडे में कंपनी की मध्यस्थता स्वीकार की।
- साथ ही पेशवा द्वारा ब्रिटिश विरोधी सभी यूरोपीय लोगों को सेना व अन्य सेवाओं से हटा दिया गया।
- सभी मराठा सरदारों द्वारा बसीन की इस संधि का विरोध किया गया और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की गयी।
- इसके बाद वेलेजली ने पहले भोंसले के साथ देवगाँव की संधि कर अंग्रेजों ने कटक व बरार का क्षेत्र प्राप्त किया। फिर सिंधिया को 1803 में पराजित किया और दिसंबर 1803 में सिंधिया के साथ सुर्जी अर्जन गाँव की संधि की।
- होल्कर को पराजित कर अंग्रेजों ने उसे राजपुर घाट की संधि (1805) के लिए मजबूर किया।
- इस प्रकार द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध में विभिन्न मराठा सरदारों को मुंह की खानी पड़ी और मराठा क्षेत्रों में अंग्रेजी प्रसार मजबूत हुआ।

तृतीय - आंग्ल मराठा युद्ध (1817 - 18)

- आंग्ल मराठा संबंधों का अंतिम संघर्ष गवर्नर जनरल लार्ड-हेस्टिंग्स के काल में हुआ।
- तृतीय आंग्ल मराठा युद्ध की शुरूआत पिंडारियों के दमन से हुई। नवंबर 1817 में सिंधिया के साथ अंग्रेजों ने ग्वालियर की संधि जिसके अनुसार सिंधिया ने पिंडारियों के दमन में अंग्रेजों का सहयोग करने का वचन दिया।
- जून 1817 में ही अंग्रेजों ने पेशवा के साथ पूना की संधि की जिसके तहत पेशवा ने मराठा संघ की अध्यक्षता त्याग दी लेकिन इसके बाद पेशवा, भोंसले एवं होल्कर ने मिलकर
- अंग्रेजों के साथ की गयी संधि को तोड़ते हुए अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की।
- इसके परिणामस्वरूप किर्की में पेशवा, सीताबर्डी में भोंसले एवं महिदपुर में होल्कर की सेनाओं को अंग्रेजी सेना ने बुरी तरह पराजित किया। इसके बाद मराठों की सैन्य शक्ति लगभग समाप्त सी हो गयी।
- पेशवा बाजीराव द्वितीय ने फ़रवरी 1818 में अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने पेशवा के पद को समाप्त कर बाजीराव द्वितीय को कानपुर के पास बिठूर में पेंशन पर भेज दिया। यही 1853 में बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हो गयी। मराठों के पतन में पेशवा बाजीराव द्वितीय का सर्वाधिक योगदान रहा।
- अन्य मराठा सरदारों के साथ संधि कर उनके अधिकांश राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिए गए और शेष छोटे छोटे - राज्य भी कंपनी के अधीनस्थ हो गए।

आंग्ल - सिख युद्ध

- डब्ल्यू. एफ. ऑसबर्न ने 1838 में लिखा कि हमें रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद तुरंत ही पंजाब को जीतकर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेना चाहिए और सिंध को अपनी सीमा बनानी चाहिए।
- यह कथन अपने आप में अंग्रेजी साम्राज्यवादी प्रसार की मनसा को स्पष्ट रूप में दर्शाता है। 1839 में रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पंजाब में राजनीतिक अस्थिरता फैल गयी और वहाँ एक के बाद एक कई स्वार्थी एवं भ्रष्ट शासक आए जिससे स्थिति और गंभीर बन गयी।

- इसके बाद सत्ता में सैनिकों का प्रभाव बढ़ा किन्तु अनुशासनहीनता ने समस्या को विकराल बना दिया और इस तरह की अस्थिर परिस्थितियों ने अंग्रेजों को शासन में हस्तक्षेप का समुचित अवसर प्रदान किया।

प्रथम आंग्ल – सिख युद्ध (1845 – 46)

- प्रथम आंग्ल - सिख युद्ध रणजीत की मृत्यु के 06 वर्षों - बाद गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग के काल में हुआ।
- इस युद्ध का मूल कारणों में अंग्रेजों द्वारा सिंध पर अधिकार करना जिससे अंग्रेजी नीति की आक्रमकता जाहिर हुई तथा सिख सेना की अनुशासनहीनता एवं अनियंत्रित व्यवहार शामिल रहा।
- वस्तुतः 1844 में लार्ड एलनबरो की जगह लार्ड हार्डिंग गवर्नर जनरल बनकर आया और उसने पेशावर से पंजाब तक नियंत्रण का स्पष्ट निर्देश जारी किया।
- प्रथम आंग्ल - सिख युद्ध के तहत अंग्रेज व सिखों के बीच चार लड़ाइयाँ हुई, इनमें शामिल हैंः मुदकी, फिरोजशाह, बद्धोवाल एवं अलीवाल की लड़ाइयाँ। यद्यपि ये चारों लड़ाइयाँ निर्णायक नहीं रही लेकिन पांचवीं सबराओं की लड़ाई निर्णायक रही और इसने अंग्रेजी सेना की जीत को सुनिश्चित किया।
- प्रथम आंग्ल - सिख युद्ध के बाद 1846 में लाहौर की संधि हुई जिसके तहत अंग्रेजों को सतलज नदी के पार का क्षेत्र तथा सतलज एवं व्यास नदी के मध्य के सभी दुर्ग प्राप्त हुए।
- इसके अतिरिक्त महाराजा से अंग्रेजों को डेढ़ करोड़ रूपये युद्ध हर्जाने के रूप में मिले तथा सेना को भी सीमित करना पड़ा (12 हजार घुड़सवार एवं 20 हजार पैदल
- सेना तक)। साथ ही हैनरी लॉरेंस लाहौर में रेजिडेंट के रूप में भी नियुक्त हुआ।
- अल्पायु दलीप सिंह महाराजा नियुक्त हुए, रानी ज़िंदा महाराज की संरक्षिका एवं लाल सिंह वजीर नियुक्त हुआ।

द्वितीय – आंग्ल सिख युद्ध (1848 – 49)

- द्वितीय आंग्ल - सिख युद्ध एवं पंजाब का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी के काल में संपन्न हुआ।
- द्वितीय आंग्ल - सिख युद्ध का कारण मुल्तान का विद्रोह - जिसे सही समय से दबाया नहीं जा सका। पंजाब कौंसिल का अध्यक्ष हैनरी लोरेंस ने बड़ी संख्या में सिख सेना को भंग किया जिससे अराजकता का माहौल उत्पन्न हो गया।
- डलहौजी की चेतावनी पर सिख सरदारों ने युद्ध प्रारंभ कर दिया। द्वितीय आंग्ल- सिख युद्ध के तहत रामनगर एवं चिलियाँवाला का युद्ध लड़ा गया परंतु इन दोनों युद्ध में कोई निर्णय नहीं निकला।
- आगे फ़रवरी 1849 में चिनाव के किनारे गुजरात के युद्ध में सिखों की निर्णायक हार हुई और लार्ड डलहौजी ने पंजाब को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।
- दलीप सिंह पेंशन पर इंग्लैण्ड भेज दिया गया।

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR